सहजोबाई
और
दयाबाई

प्रभुप्रेम का रूप

राधास्वामी सत्संग ब्यास

सहजोबाई और दयाबाई

प्रभुप्रेम का रूप

डॉ. टी. आर. शंगारी

ॐ अन्नपूर्णा
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

राधास्वामी सत्संग ब्यास

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 7
भूमिका 9

सहजोबाई

जीवन 13
उपदेश 25
परमात्मा 25
मनुष्य-जन्म और प्रभुभक्ति 37
शरीर और संसार की वास्तविकता 51
कर्म और कर्मफल 62
जीव की अवस्था 68
सतगुरु 83
पूर्ण साधु की संगति 108
नाम का अंतर्मुखी अभ्यास 117
प्रेम 137
नम्रता 140
नवधा भक्ति 145
विनती और प्रार्थना 149
सोलह तिथियाँ 154
चेतावनी 167
दोहे 173

दयाबाई

जीवन 197

उपदेश 203

परमात्मा 203

सतगुरु 227

पूर्ण साधु 233

सच्चा सूरमा 238

प्रभुप्रेम 240

चेतावनी 244

सार 245

संदर्भ सूची 247

संदर्भ ग्रंथ 257

परमार्थ संबंधी पुस्तकें 261

भूमिका

प्राचीन भारतीय समाज में नारी को बहुत आदरणीय स्थान प्राप्त था। यज्ञ को संपन्न करने के लिए पति के साथ पत्नी का होना अनिवार्य माना जाता था। पत्नी के न होने पर उसके स्थान पर उसकी सोने की मूर्ति रखी जाती थी। नारी को अर्धांगिनी कहा जाता था जिससे भाव है कि स्त्री के बिना पुरुष अधूरा है। सीता, सावित्री, अनसूया आदि पतिव्रता स्त्रियों के समान गार्गी जैसी पूर्णज्ञानी नारियों को भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। प्राचीन काल से यह प्रथा चली आ रही है कि कन्यापूजन के समय उनके पाँव सम्मान सहित धोये जाते हैं।

कुछ धर्मों में गृहस्थ के त्याग पर बल दिये जाने के कारण नारी को पारमार्थिक उन्नति में बाधा माना जाने लगा। जबकि सच्चाई यह है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में धार्मिक वृत्ति अधिक प्रबल होती है। उनमें प्रेम, नम्रता, सेवा, निष्ठा, त्याग और समर्पण की भावना प्रधान होती है। मध्यकाल में मीराबाई, सहजोबाई और दयाबाई ने अपने उदाहरण द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि नारी भी आध्यात्मिकता की सर्वोच्च उँचाइयों तक पहुँचने में समर्थ है।

पूर्ण संत देश, क़ौम, धर्म, जाति, अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष में ही नहीं, बल्कि पुण्यशील और पापियों के बीच भी भेदभाव नहीं करते। उनका ध्यान जिज्ञासु की आत्मा पर होता है। आत्मा न हिंदू है, न मुसलमान, न स्त्री, न पुरुष। संतों के दरबार में प्रत्येक जीव को एक समान सम्मान प्राप्त होता है। संत चरनदास ने भी अपने कई अन्य शिष्यों की तरह सहजोबाई, दयाबाई और नूपीबाई को अलग-अलग स्थानों पर जाकर संतमत का प्रचार करने का दायित्व सौंपा।

सहजोबाई और दयाबाई के जीवन से संबंधित अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। संत-महात्माओं की बानी ही उनके व्यक्तित्व की वास्तविक झलक देती है। प्रसन्नता की बात यह है कि हमें उनकी बानी मूलरूप में प्राप्त है। सहजोबाई और दयाबाई की बानी से उनकी आध्यात्मिक पूर्णता का ज्ञान होता है। ये दोनों ही सत्य, संयम, प्रभुभक्ति, गुरुभक्ति और ज्ञान की साक्षात् मूर्तियाँ थीं। उनकी बानी में हृदय की निर्मलता, नम्रता, त्याग और उनकी निष्काम सेवा की भावना उभरकर सामने आती है।

पुस्तक की तैयारी में महन्त घनश्यामदास, हौज़ क़ाज़ी दिल्ली द्वारा प्रकाशित सहजोबाई के ग्रंथ *सहज प्रकाश* और बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित *सहज प्रकाश* से लाभ उठाया गया है। दयाबाई की बानी के लिए बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित पुस्तक *दयाबोध* और *विनय मालिका* से सहायता ली गयी है।

पर्याप्त खोज के बाद डॉ. श्याम सुंदर शुक्ल द्वारा लिखे गये शोध-प्रबंध '*संत चरनदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य*' में चरनदासी संप्रदाय के पूर्ण इतिहास के साथ इस धारा के साहित्य का विस्तृत अध्ययन प्राप्त है। इस पुस्तक से प्राप्त दिशा निर्देशन और सहायता के लिए लेखक उनका आभारी है।

लेखक श्रीमती गीता शर्मा का भी आभारी है जिन्होंने सहजोबाई की बानी पर पी-एच. डी. की उपाधि के लिए लिखे गये अपने शोध-प्रबंध की एक प्रति लेखक को अध्ययन के लिए दी। डॉ. संगीता गोयल की रचना *चरनदास और उनकी परम्परा* में निर्गुणवादी महिला संत (सहजोबाई और दयाबाई) की साधना का अध्ययन से विशेष लाभ प्राप्त हुआ है। लेखक उनका और अन्य विद्वानों का हृदय से आभारी है जिनसे बहुमूल्य जानकारी मिली और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। जिन साथियों ने पुस्तक के सुधार में योगदान दिया है, लेखक उनका भी आभारी है।

डेरा बाबा जैमल सिंह,
ज़िला अमृतसर, (पंजाब)

डॉ. टी. आर. शंगारी

सहजोबाई

जीवन

मध्यकाल में 'निर्गुण भक्तिधारा' से जुड़ी संत श्रेणी के अंतर्गत मीराबाई के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम सहजोबाई का है। सहजोबाई के पूर्वज राजस्थान के थे, परंतु उनके पिता दिल्ली आकर बस गये।

सहजोबाई का संबंध चरनदासी संप्रदाय से है। संत चरनदास जी के लगभग पाँच हज़ार शिष्यों में से 108 प्रमुख शिष्य थे, जिनके नाम पर गद्दियाँ चलीं। इन शिष्यों में सहजोबाई और दयाबाई को बहुत प्रसिद्धि मिली। उनके नाम पर भी गद्दियाँ चलीं। जहाँ एक ओर सहजोबाई और दयाबाई की प्रसिद्धि में चरनदासी संप्रदाय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, वहाँ दूसरी ओर सहजोबाई और दयाबाई ने भी चरनदासी संप्रदाय के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अन्य संतों की तरह इन्होंने भी अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि का श्रेय अपने सतगुरु चरनदास जी को दिया है।

जन्म

अलग-अलग विद्वानों ने सहजोबाई के जन्म की तिथि अलग-अलग बतायी है। कुछ विद्वानों का मानना है कि सहजोबाई का जन्म विक्रमी संवत् 1800 में हुआ, जो सही प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सहजोबाई ने अपनी बानी में स्पष्ट उल्लेख किया है कि उनका ग्रंथ सहज प्रकाश विक्रमी संवत् 1800 में रचा गया। अत: स्पष्ट है कि आपका जन्म इससे पहले हुआ होगा। दिल्ली में सहजोबाई की गद्दी के वर्तमान महंत

घनश्यामदास जी ने सन् 2000 में सहजोबाई के ग्रंथ सहज प्रकाश का प्रकाशन किया। उसमें उन्होंने सहजोबाई का जन्म विक्रमी संवत् 1782 के सावन महीने की शुक्लपक्ष की पंचमी के दिन (2 अगस्त, सन् 1725) दिल्ली में परीक्षितपुर में हुआ माना है। डॉ. श्याम सुंदर शुक्ल ने भी इसी तिथि को प्रमाणिक माना है।* कुछ विद्वानों का मत है कि सहजोबाई का जन्म राजस्थान के डेहरा नामक गाँव में हुआ। सहजोबाई के पूर्वज बेशक इसी गाँव के थे, परंतु उनके पिता जी दिल्ली में परीक्षितपुर में आकर बस गये।

संत चरनदास जी के समान सहजोबाई के माता-पिता भी ढूसर (भार्गव) कुल के थे। आपने अपनी बानी में अपने पिता जी का नाम श्री हरि प्रसाद लिखा है: 'हरि प्रसाद की सुता, नाम है सहजोबाई'।[1] आपकी माता जी का नाम श्रीमती अनूपी देवी था। संत चरनदास जी आपके मामा जी के सुपुत्र थे।

सहजोबाई ने किसी विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की, इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसलिये अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि सहजोबाई ने प्रारंभिक शिक्षा घर पर माता-पिता से ही प्राप्त की होगी। उनकी बानी का आधार ग्रंथ-शास्त्रों का अध्ययन न होकर सहज आंतरिक अनुभव है।

विवाह की रस्म

प्राचीन काल में लड़कियों का विवाह छोटी आयु में ही कर दिया जाता था। सहजोबाई का विवाह 11-12 वर्ष की आयु में ही निश्चित कर दिया गया। विवाह की रस्म चल रही थी, जिसमें उनके ममेरे भाई संत चरनदास जी को भी कन्या को आशीर्वाद देने के लिए बुलाया गया। सहजोबाई दुल्हन के लिबास में सजी-सँवरी थी। संत चरनदास जी ने उसे संबोधित करते हुए कहा:

---

* *चरनदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य*, पृ. 246

चलना है रहना नही, चलना बिस्वाबीस।
सहिजो तनिक सुहाग पर, कहा गुंधावे सीस॥[2]

अर्थात् जब संसार में सदा रहना ही नहीं और यहाँ से जाना निश्चित है, तो चंद दिनों के सुहाग के लिए सिर के बाल सँवारकर शृंगार करने का क्या लाभ है? सहजोबाई के हृदय पर इन शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ा।

स्वाति बूँद केले में गिरती है तो कपूर बन जाती है; सीप में गिरती है तो मोती बन जाती है; साँप के मुँह में गिरती है तो विष बन जाती है। खारी धरती में बोया गया बीज नष्ट हो जाता है और जो धरती पूरी तरह तैयार नहीं, उसमें पड़ा बीज बहुत मुश्किल से अंकुरित होता है। अगर वही बीज उचित समय पर उपजाऊ धरती में डाला जाये, तो जल्द ही अंकुरित हो जाता है और उससे भरपूर फसल प्राप्त होती है। सहजोबाई के हृदय की धरती सतगुरु के उपदेश के लिए पूरी तरह तैयार थी। सतगुरु के वचन उसके हृदय में तीर की तरह चुभ गये। मन में सोये पूर्व पारमार्थिक संस्कार एकाएक जाग्रत हो उठे। सहजो ने गहने उतारकर फेंक दिये और विवाह करने से इनकार कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं तो परमेश्वर की भक्ति करूँगी। उस समय की सामाजिक व्यवस्था को देखते हुए यह एक आश्चर्यजनक घटना थी, जिसने सभी सगे-संबंधियों को हैरान कर दिया। परिवार में भगदड़ मच गयी तथा किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाये। सारे परिवार ने सहजो को समझाने का प्रयत्न किया, परंतु उस पर कोई असर नहीं हुआ।

मालिक की मौज कि दूल्हे के परिवार की ओर से की गयी आतिशबाज़ी के कारण दूल्हे का घोड़ा बिदककर बेतहाशा दौड़ता हुआ एक वृक्ष से जा टकराया। दूल्हे ने वहीं दम तोड़ दिया। जब दु:खी हृदय से बारातियों ने सहजो के माता-पिता को यह समाचार दिया, तो उनके हृदय पर संत चरनदास जी के वचनों का इतना गहरा प्रभाव

हुआ कि वे अपने चारों पुत्रों और पुत्री सहजोबाई सहित उनके शिष्य बन गये। संत चरनदास जी के शिष्य जोगजीत जी *श्री लीला सागर* में लिखते हैं:

सब शिष भये महाराज के, मन क्रम लइ शरणाय।
आज्ञाकारी ही रहैं, ये तिन्ह करें सहाय॥[3]

सहजोबाई का भक्ति भाव

सहजोबाई के गुरुभाई जोगजीत जी ने *श्री लीला सागर* में सहजोबाई की भरपूर प्रशंसा की है। आप लिखते हैं:

हरि प्रसाद की पुत्री जानों। चरणदास की शिष्य पिछानों॥
तिहुँ कुल दीपक सहजो बाई। सासर पीहर भक्ति बढ़ाई॥
सत्य शील में साँवत साँची। जग कुल व्याधि सबन सों बाँची॥
दया क्षमा की मूरति मानों। ज्ञान ध्यान भरपूर सु जानों॥
साधुन को ऐसी सुखदाई। मानों भक्ति रूप धरि आई॥
प्रेम लगन माँहीं अधिकाई। कर्मा* और ज्यों मीराँ बाई॥
योग युक्ति बैराग सुहाये। ये अँग जनु भूषण छबि छाये॥
अनुभव हिये प्रकाश जु ऐसी। पूरण शशियर चाँदन जैसी॥[4]

कर्माबाई और मीराबाई के समान सहजोबाई भी भक्तिरस में सराबोर सत्य, शील, दया, क्षमा, गुरुभक्ति, साधुओं की सेवा, प्रेम, लगन, योग, वैराग्य आदि असाधारण पारमार्थिक गुणों से सुशोभित थीं।

जग की व्याधि मिटाय के, लावे हरि गुरु रंग।
बानी जाकी सोहनी, सुनत जु उठे उमंग॥[5]

---

* कर्माबाई

सहजोबाई की बानी में अत्यंत माधुर्य और आकर्षण था, जिसे सुनकर लोग अपने दु:ख भूल जाते और उनके हृदय में प्रभु के प्रत्यक्ष रूप सतगुरु के प्रति प्रेम की उमंग उठने लगती।

गुरु भक्ती एकी पहिचानों। दूजी ता सम और न मानों॥
गुरु को सर्वस आपा अर्पा। गुरु बिन दूजा भाव न थर्पा॥
गुरु ही ता के सर्वस जानों। जीवन मूरी गुरु पहिचानों॥
राम से गुरु को अधिकी माने। पूरण ब्रह्म सु गुरु ही ठाने॥
गुरु का जाप जपे दिन रैना। गुरु का ध्यान धरे हिये चैना॥
औरन को गुरु मत समझावे। गुरु बिन और न वाहि सुहावे॥
जैसे सूरा रण में जूझे। ऐसो गुरु मत में आ रुझे॥
गुरु की भक्ति करन का लाहा। जीवन जग में नेम निवाहा॥

॥ दोहा ॥

चरणदास की शिष्य दृढ़, सहजो बाई जान।
ताकी जो गुरु भक्ति पर, जोगजीत कुर्बान॥[6]

सहजोबाई में गुरु के प्रति अपार भक्ति भाव था। उनके विचार में गुरु की भक्ति से बढ़कर कोई और भक्ति नहीं। आपने अपना आपाभाव सतगुरु के चरणों में समर्पित कर दिया था। गुरु आपके लिए संजीवनी बूटी (जीवन देनेवाली बूटी) थे। आप अपने गुरु को परमात्मा का रूप ही नहीं, बल्कि परमात्मा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानती थीं। आप दिन-रात गुरु द्वारा बतायी युक्ति के अनुसार सुमिरन करतीं और शांत भाव से हृदय में गुरु का ध्यान करतीं। आप स्वयं भी सतगुरु के उपदेश पर अमल करतीं और दूसरों को भी गुरुमत के बारे में समझाती थीं। आपकी अवस्था ऐसी हो गयी थी कि गुरु के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। जिस प्रकार कोई वीर योद्धा विजय प्राप्त करने की ठानकर युद्ध के मैदान में उतरता है, उसी प्रकार सहजोबाई भी आध्यात्मिकता में पूर्ण सफलता प्राप्त

करने के लिए जी-जान से गुरुभक्ति में लग गयीं। सहजोबाई का अपने सतगुरु में दृढ़ विश्वास दूसरों के लिए एक उदाहरण बन गया था।

गुरु की शरण प्राप्त करके सहजोबाई गुरुभक्ति में तल्लीन हो गयीं। गुरुभक्ति और गुरु के उपदेश का पालन आपके जीवन का आधार बन गया। घनश्यामदास जी लिखते हैं कि धीरे-धीरे यह अवस्था हो गयी कि सहजोबाई कई-कई दिन समाधि में लीन रहतीं। सतगुरु की कृपा से प्रेम, विश्वास, लगन और उत्साह के साथ पाँच वर्ष तक निरंतर अभ्यास से सहजोबाई को पूर्णता की प्राप्ति हो गयी। डॉ. श्याम सुन्दर शुक्ल के अनुसार सहजोबाई को अष्टांग योग और नवधा भक्ति में पूर्णता प्राप्त हो गयी थी। आप सहज समाधि की अवस्था प्राप्त करके त्रिलोकदर्शी हो चुकी थीं। आप अपनी बानी में संकेत करती हैं:

सहजो गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार।
तीन लोक दृष्टा भये, मिटयौ भरम अँधियार॥[7]

गुरु द्वारा बख़्शे ज्ञान से हृदय प्रकाश से भर गया और भ्रम का अँधेरा मिट गया। सहजोबाई को तीनों लोकों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया।

सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही, सूझि पड़ै भगवन्त॥[8]

सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से उस अगोचर प्रभु को देखनेवाले आत्मिक नेत्र खुल गये, प्रभु के साथ मिलाप हो गया और संपूर्ण सृष्टि में वह प्रभु ही व्याप्त दिखायी देने लगा।

सतगुरु की दया

पूर्ण संतों की शिक्षा का एक विचित्र पहलू यह है कि सतगुरु द्वारा बख़्शे नाम के सुमिरन से जब ध्यान अंदर स्थिर हो जाता है, तब गुरु का

प्रकाशमय स्वरूप प्रकट हो जाता है। उस स्वरूप के दर्शनों से शिष्य के अंदर जो प्रेम, भरोसा और वैराग्य जाग्रत होता है, उसका शब्दों में वर्णन करना असंभव है। किसी कारण इस स्वरूप के दर्शन बंद हो जायें और बाहर भी गुरु के दर्शन न हों, तो शिष्य की अवस्था पानी के बिना तड़प रही मछली जैसी हो जाती है। एक बार सहजोबाई के साथ भी ऐसा ही हुआ।

संत चरनदास जी अपने शिष्यों की विनती पर कुछ दिनों के लिए दिल्ली से शाहजहाँपुर चले गये। जब सहजोबाई को न अंदर दर्शन हुए और न ही बाहर, तो वे सतगुरु के वियोग में तड़प उठीं। सतगुरु अंतर्यामी होते हैं। उन्हें अपने शिष्यों की अवस्था का पूर्ण ज्ञान होता है। सहजोबाई की तड़प से सतगुरु के हृदय में दया की लहर उठी और उन्होंने अपने सूक्ष्म प्रकाशमय स्वरूप में सहजोबाई को अंतर में दर्शन बख़्शकर, उसके हृदय की तपन बुझायी। संत चरनदास जी के शिष्य स्वामी रामरूप जी ने श्री गुरु भक्ति प्रकाश नामक ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है:

एक पहर लौं रात के, सबको दरशन दीन।
डेढ़ पहर जब रात रहि, तभी सुरत मन कीन॥
सहजोबाई विकल अति, तासो मिलहूँ जाय।
सोचत भए अलेप सब, प्रगटे वा के ठांय॥
सहजोबाई ध्यान में, बैठी थी चित लाय।
उंही पलकें खुल गई, उठीं देखि घबराये॥
चरणों ऊपर हाथ धरि, और कही महाराज।
तुम तौ रामत को गये, कैसे आए आज॥
महाराज हंस यों कही, यूँ ही आया गोप।
बाजू बकसा हाथ का, फिर भए तुरत अलोप॥
बूआ जप करती हुती, सहजो ही के पास।
चरन दास का आवना, परगट देखा जास॥

भोर भए फैली घनी, सभी हवेली माहिं।
नर नारी पछताईयां, दरशन पायो नाहिं॥
प्रगटे शाहजहांपुर विशे, किनहीं न पायो भेद।
साधुन बाजू पूंछिया, हंस एन कीया निशेध॥
हठ कर लोगन पूछिया, कही नाथ मुसकाय।
सहजो को वह दे दीया, कही खोल समझाय॥[9]

सतगुरु केवल देह स्वरूप ही नहीं हैं। वे कहीं भी सूक्ष्म, नूरी या शब्द स्वरूप में प्रकट होकर अपने शिष्यों को दर्शन देकर निहाल कर सकते हैं।

संत चरनदास जी सहजोबाई की भक्ति पर बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में ही कुछ अन्य शिष्यों की तरह सहजोबाई को भी संतमत के प्रचार के लिए अनेक स्थानों पर भेजा। सहजोबाई और उनके गुरुभाइयों तथा गुरुबहनों के प्रयास से देश में सैकड़ों स्थानों पर चरनदासी संप्रदाय के केंद्र स्थापित हो गये। सहजोबाई के शिष्यों ने भी चरनदासी संप्रदाय के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

डॉ. श्याम सुन्दर शुक्ल लिखते हैं कि सहजोबाई की सिद्धि और प्रसिद्धि से प्रभावित होकर उस समय के बादशाह शाह आलम द्वितीय ने विक्रमी संवत् 1823 में, सहजोबाई को 1100 मोहरें भेंट कीं और बथला नामक गाँव—जो आजकल गाज़ियाबाद में है—जागीर के रूप में दिया। इसके अलावा बादशाह ने दिल्ली के साथ लगते पाँच गाँवों के कुछ भाग भी जागीर के रूप में भेंट किये।*

सहजोबाई की गद्दी संत चरनदास जी के हुक्म से उनके जीवनकाल में ही स्थापित हो गयी थी। अनेक जीवों ने आपसे दीक्षा प्राप्त की। विद्वानों ने सहजोबाई के दस प्रमुख शिष्यों का उल्लेख किया है जिनकी अपनी अलग गद्दियाँ स्थापित हुईं: 1. श्री श्याम विलास जी 2. श्री कर्ता नन्द जी 3. श्री अगम दास जी 4. श्री गुरु निवास जी 5. श्री राम प्रसाद जी

* चरनदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य, पृ. 248

6. श्री संत हजूरी जी 7. श्री हरनाम दास जी 8. श्री रघुनाथ स्नेही जी 9. श्रीमती लक्ष्मी बाई जी 10. श्रीमती सुमिता बाई जी।*

देहत्याग

संत चरनदास द्वारा विक्रमी संवत् 1838 में पंचभौतिक शरीर त्याग देने के बाद सहजोबाई 24 साल तक दिन-रात सतगुरु के उपदेश का प्रचार करती रहीं। आपने भी विक्रमी संवत् 1862 अर्थात् 24 जनवरी, 1805 ई. में शरीर त्याग दिया। सहजोबाई की गद्दी आज भी चल रही है तथा श्रद्धालु उनकी याद में प्रेम और श्रद्धा से बसंत का उत्सव मनाते हैं।

बानी

सहजोबाई अपनी बानी में लिखती हैं कि विक्रमी संवत् 1800 में फागुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन जब मेरे हृदय में अपने गुरुदेव की स्तुति करने की बहुत अधिक उमंग उठी, तो मैंने जिस बानी की रचना की उससे सहज प्रकाश नामक ग्रंथ की रचना हुई:

फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
संबत अठारे सैं हुते, सहजो किया बिचार॥
गुर अस्तुति के करन कूँ, बाढ़यो अधिक हुलास।
होते होते हो गई, पोथी सहज प्रकास॥
दिल्ली सहर सुहावना, प्रीछितपुर में बास।
तहाँ समापत ही भई, नवका सहज प्रकास॥
सहज प्रकास पोथी कही, चरनदास परताप।
पढ़ै सुनै जो प्रीत सूँ, भाजै सबही पाप॥[10]

* डॉ. संगीता गोयल, चरनदास और उनकी परम्परा में निर्गुणवादी महिला संत (सहजोबाई और दयाबाई)

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सहजोबाई ने 18 वर्ष की आयु में सहज *प्रकाश* की रचना की। इस ग्रंथ की रचना करने से पहले वे परमपद प्राप्त कर चुकी थीं। इतिहास में इतनी छोटी आयु में इस तरह की दिव्य प्राप्ति के उदाहरण दुर्लभ हैं। इनसे प्रेरणा मिलती है कि अगर गुरु की दया, नाम की कमाई और पूर्व जन्मों के संस्कार हों तो छोटी आयु पूर्णता की प्राप्ति में रुकावट नहीं है। वास्तव में आध्यात्मिक प्राप्ति का संबंध मन की प्रवृत्ति या ध्यान से है। भक्त ध्रुव और प्रह्लाद दोनों छोटी आयु के थे। जीव किसी भी आयु में प्रेम, विश्वास, श्रद्धा और लगन से प्रभु की भक्ति में लग जाये, उसे प्रभुप्राप्ति के उद्देश्य में सफलता मिलना निश्चित है।

सहजोबाई की बानी विचारपूर्ण, गहरी और भावपूर्ण होते हुए भी बहुत विशाल नहीं है। इसमें मुख्य रूप से प्रभु, नाम और सतगुरु के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही मनुष्य-जन्म के उद्देश्य, शरीर और संसार की वास्तविकता, प्रेम, नम्रता, नवधा भक्ति आदि का वर्णन प्रेरक ढंग से किया गया है। सहजोबाई ने सृष्टि के संचालन में कार्यशील 'कर्म और कर्मफल' के सिद्धांत का विवेचन चेतावनी के रूप में किया है। आशा और तृष्णावश किये गये कर्मों के कारण जीवात्मा को चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है, बानी में इस तथ्य को विशेष रूप से उजागर किया गया है। मनुष्य की वर्तमान दुर्दशा का दृश्य प्रस्तुत करके अंत में उस साधन का भी वर्णन किया है, जिसके द्वारा प्रभु के साथ मिलाप किया जा सकता है।

मनुष्य-जन्म का महत्त्व अध्याय के अंतर्गत 'सात वार निर्नय' में सहजोबाई ने जीवात्मा को प्रभु मिलाप के उद्देश्य को पूर्ण करने की प्रेरणा दी है। सोलह तिथियों पर रची बानी में चौरासी के दु:ख भोग रहे जीव की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए उस आध्यात्मिक साधना का भी सरस वर्णन है, जिसके द्वारा जीव प्रभु के साथ मिलाप करके प्रभु का रूप बन सकता है।

सहजोबाई ने अपनी बानी की रचना कुंडलिया, चौपाई और दोहे के रूप में की है। सरल भाषा में उनकी बानी उन दिनों की दिल्ली के

आसपास की खड़ी बोली में है, जिसमें ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी और फ़ारसी शब्दावली का मिश्रण है।

इस बानी की रचना रागों के अनुसार है। आपने 20 रागों में 40 पदों की रचना की है। रागों में बँधी इनकी बानी में भाषा की सरलता, भावों की गहराई और अलौकिक रस है। सारी बानी उपदेशात्मक है, परंतु कहीं भी उपदेश नीरस या उकताने वाला प्रतीत नहीं होता। निजी अनुभव के आधार पर लोकहित की भावना से रचित इस बानी का प्रवाह पाठक को स्वाभाविक ही परमार्थ की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

सहजोबाई के दोहों में ज्ञान और उससे प्राप्त होनेवाले आनंद का आश्चर्यजनक मिश्रण है। ये दोहे शीघ्र ही कंठस्थ हो जाते हैं तथा पाठक के हृदय में घर कर लेते हैं। सहजोबाई की बानी में भाव और सिद्धांत का मिश्रण अति सुंदर और संगीतमय है। इसे संसार के श्रेष्ठ पारमार्थिक साहित्य में सम्माननीय स्थान प्राप्त है।

उपदेश

परमात्मा

अन्य संत-महात्माओं की बानी की तरह सहजोबाई की बानी का मुख्य उद्देश्य भी जीव के अंदर प्रभु के प्रति प्रेम और दृढ़ विश्वास उत्पन्न करना तथा भक्ति द्वारा प्रभु से मिलाप की प्रेरणा देना है। इस उद्देश्य से सहजोबाई ने उस सर्वगुण सम्पन्न परमात्मा का यशोगान किया है।

सच्चिदानन्द

सहजोबाई ने अपनी बानी में 'सच्चिदानन्द का अंग' शीर्षक के अंतर्गत प्रभु का गुणगान किया है। 'सत्' का अर्थ है: अविनाशी और परिवर्तन रहित। 'चित्' का अर्थ है: चैतन्यरूप तथा 'आनंद' का अर्थ है: आनंदरूप। सभी धर्मग्रंथों में प्रभु को सच्चिदानन्द कहकर उसका गुणगान किया गया है।

तेरी लीला अधिक सोहावनी।
देखि देखि मन हुलसत है, संतन के मन भावनी॥
तत गुन करि ब्रह्मंड बनायौ, अधर धरयौ अचरज भयौ।
जाके मध्य यही संसारा, भाँति भाँति रँग रँग हयौ॥
सात दीप नौ खंड रचे हैं, सुरग मिरत पाताल हीं।
इच्छा करत सबै बनि आयौ, होइ गयौ ततकाल हीं॥
माया अगम अपार तुम्हारी, बरन सकै कहा बेद है।

तीन गुनन तक बुध पहुँचत है, परे तुम्हारो भेद है॥
छिन में उतपति परलै छिन में, जो चाहौ सब कुछ बनै।
चरनदास गुरु दृष्ट देइ जब, गुनाबाद सहजो भनै॥[1]

संतजन प्रभु की न्यारी और प्यारी लीला देखकर प्रसन्न होते हैं। प्रभु ने तीन गुणों तथा पाँच तत्त्वों द्वारा ब्रह्मांड का सृजन करके उसको अधर में टिका दिया है। यह आश्चर्यजनक रंगबिरंगा संसार उस अनंत ब्रह्मांड का छोटा-सा भाग है। उसी के हुक्म से सात द्वीप, नौ खंड, स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल प्रकट हुए हैं। अगम-अपार प्रभु की महिमा वेद भी नहीं कर सके। बुद्धि की पहुँच केवल तीन गुणों तक है, परंतु वह तीनों गुणों से ऊपर है। वह अपनी मौज में क्षणभर में सृष्टि का सृजन कर सकता है और क्षणमात्र में इसका नाश भी कर सकता है। सहजोबाई कहती हैं कि जब सतगुरु चरनदास जी से उन्हें ज्ञान की दृष्टि प्राप्त हुई, तभी उस प्रभु का यशोगान हो पाया है।

प्रभु की महिमा के प्रसंग में सहजोबाई कहती हैं:

नया पुराना होय ना, घुन नहिं लागै जासु।
सहजो मारा ना मरै, भय नहिं ब्यापै तासु॥
किरै घटै छीजै नहीं, ताहि न भिजवै नीर।
ना काहू के आसरे, ना काहू के सीर॥[2]

प्रभु निर्भय है, अमर-अविनाशी है। मायामय पदार्थों की तरह वह समय के साथ नया या पुराना नहीं होता। उसे किसी का डर नहीं है और न ही उसे कोई मार सकता है। वह प्रभु अखंड है, कभी घटता नहीं, नष्ट नहीं होता और न ही उसे पानी गला सकता है। वह किसी के अधीन नहीं है, न उसे किसी सहारे की आवश्यकता है और न ही उसका कोई भागीदार है।

परलय में आवै नहीं, उत्पति होय न फेर।
ब्रह्म अनादी सहजिया, घने हिराने हेर॥
जाके किरिया करम ना, षट दर्सन को भेस।
गुन औगुन ना सहजिया, ऐसो पुरुष अलेस॥[3]

वह अनादि प्रभु विनाश और सृजन की प्रक्रिया (प्रलय और उत्पत्ति) से ऊपर है। वह निर्लेप पुरुष तीन गुणों और छ: दर्शनों की पहुँच से भी परे है। उसकी थाह पाने का प्रयत्न करते-करते बड़े-बड़े दार्शनिक भी हार गये।

जो परिवर्तन और विनाश के दायरे में है, वह सब झूठ है। सत्य वह है जो कभी बदलता नहीं, जो सदा एकरंग, एकरूप और एकरस रहता है, जो अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं करता और जिसके अस्तित्व को कोई दूसरा समाप्त नहीं कर सकता।

रूप बरन वा के नहीं, सहजो रंग न देह।
मीत इष्ट वा के नहीं, जाति पाँति नहिं गेह॥
सहजो उपजै ना मरै, सदबासी नहिं होय।
रात दिवस ता में नहीं, सीत ऊस्न नहिं सोय॥
आग जलाय सकै नहीं, सस्तर सकै न काटि।
धूप सुखाय सकै नहीं, पवन सकै नहिं आटि॥
मात पिता वा के नहीं, नहीं कुटुँब को साज।
सहजो वाहि न रंकता, ना काहू को राज॥
आदि अन्त ता के नहीं, मध्य नहीं तेहि माहिं।
वार पार नहिं सहजिया, लघू दीर्घ भी नाहिं॥[4]

वह हरि देहरहित है। वह रंग-रूप, दोस्त-दुश्मन, जाति-पाँति आदि से ऊपर है। परमात्मा जन्म-मरण से भी परे है। वह सदा एकरूप तथा

एकरस रहता है, वह दिन-रात और गरमी-सर्दी के प्रभाव से मुक्त है। अग्नि उसे जला नहीं सकती, शस्त्र उसे काट नहीं सकते, धूप सुखा नहीं सकती और वायु उड़ा नहीं सकती। वह देश-काल के प्रभाव और सीमाओं से मुक्त है। उसका न कोई माता है न पिता और न ही कुटुंब परिवार। न वह राजा है, न भिखारी। उसका कोई आदि, मध्य और अंत नहीं है। न वह छोटा है, न बड़ा। उस बेअंत का अंत पाना असंभव है।

अलख-अगम

कहा कहूँ कहा कहि सकूँ, अचरज अलख अभेव।
सुने अचंभो सों लगै, सहजो ब्रह्म अलेव॥[5]

सहजोबाई कहती हैं: वह परमात्मा एक अद्‌भुत सत्य है। माया से अलिप्त, वह अलख, अगम, अथाह और अगोचर है। मैं उस प्रभु के बारे में क्या कहूँ? उसकी महिमा शब्दों में बयान कर पाना असंभव है।

हरि कौ कोइ न जानत भेद।
सब के बड़े सोई पचि हारे, नेत नेत कहि बेद॥
नाल माहिं ब्रह्मा नहिं आयो, थाकि फिरत केहि कीन।
जोग ध्यान करि संकर हारे, थाह लेत भये लीन॥
भेद न पायो सेस सारदा, सुरपति और गनेस।
बामदेव और सनकादिक, निरे भक्त के भेस॥
ज्ञानी गुनी मुनी रिषि तेते, जेते जोगेसुर साध।
चरनदास कह सहजो बाई, पंडित पोथी लाद॥[6]

प्रभु का भेद कोई नहीं पा सकता। वेदों में भी उसे 'नेति' अर्थात् बेअंत कहा गया है। कमल में विराजमान ब्रह्मा उस प्रभु का रहस्य पाने का प्रयत्न करते हुए थक गये, परंतु उसका भेद नहीं पा सके। प्रभु के ध्यान में मगन शिव जी भी उसकी थाह न पा सके। हज़ार फनों वाले शेषनाग,

विद्या की देवी सरस्वती, इंद्र, गणेश, वामदेव आदि ऋषि और ब्रह्मा के मानस पुत्र* भी प्रभु का रहस्य न जान सके। सहजोबाई कहती हैं कि गुणी-ज्ञानी, ऋषि-मुनि, जपी-तपी, साधु, योगेश्वर और अनेक ग्रंथ-शास्त्रों के ज्ञानी पंडित भी उस अनंत का भेद नहीं पा सके।

निराकार और साकार

निराकार आकार सब, निर्गुन और गुनवन्त।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो यों भगवन्त॥[7]

प्रभु निराकार है लेकिन इस सृष्टि में उसने अनंत आकार धारण कर रखे हैं। वह निर्गुण होते हुए भी सगुण रूप में प्रकट हो जाता है। उसे 'है' और 'नहीं है' की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता।

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कछु ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप॥[8]

ता के रूप अनन्त हैं, जा के नाम अनेक।
ता के कौतुक बहुत हैं, सहजो नाना भेष॥[9]

प्रभु अनामी है, लेकिन उसके अनंत गुणों के आधार पर उसे अनेक नामों से याद किया जाता है। सब रंग-रूपों का आधार होते हुए भी उसका अपना कोई रंग-रूप नहीं है। वह एक है परंतु अनंत रूप धारण करता है। गुप्त भी वही है, प्रकट भी वही है। उसका कोई भेष या पहनावा नहीं, जबकि वह अनेक भेष धारण करके अनेक प्रकार की लीला रचाता है। द्वैत केवल भ्रम है, एक प्रभु ही सत्य है। प्रभु सर्वव्यापक होते हुए भी निर्लिप्त है।

---

* सनक, सनन्दन, सनातन और सनत् कुमार

निर्गुण और सगुण

निर्गुन सूँ सर्गुन भये, भक्त उधारनहार।
सहजो की दंडौत है, ता कूँ बारम्बार॥[10]

निर्गुन सर्गुन एक प्रभु, देख्यौ समझ बिचार।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियौ निहार॥
सहजो हरि बहु रंग है, वही प्रगट वहि गूप।
जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप॥
चरनदास गुरु की दया, गयो सकल सन्देह।
छूटे बाद बिबाद सब, भई सहज गति लेह॥[11]

निर्गुण और निराकार प्रभु जो अपने भक्तों के उद्धार के लिए सगुण रूप धारण करके संसार में प्रकट होता है, उसे बारंबार प्रणाम है।

जीव अपनी शक्ति और ज्ञान द्वारा उस सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ प्रभु को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए वह निर्गुण-निराकार प्रभु जीव की सहायता के लिए संसार में साकार रूप में प्रकट होता है। वह जीव के स्तर पर आकर उसके अंदर अपना प्रेम और विश्वास उत्पन्न करता है, उसे प्रभुभक्ति के सच्चे साधन का ज्ञान देता है और अपनी दया से उसे भक्ति में लगाकर अपना रूप बना लेता है।

सतगुरु के उपदेशानुसार की गयी प्रभुभक्ति द्वारा साधक को ऐसी सूझबूझ हो जाती है कि उसे प्रभु का निर्गुण और सगुण रूप एक ही प्रतीत होने लगता है। पानी और बर्फ़, धूप और सूर्य देखने में भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तव में एक होते हैं। उसी प्रकार सतगुरु भी निर्गुण हरि के सगुण रूप होते हैं। ऐसे सतगुरु की कृपा से साधक के सभी संदेह मिट जाते हैं, वह व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं उलझता और उसे सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है।

हाज़िर-नाज़िर

रूप नाम गुन सूँ रहित, पाँच तत्त सूँ दूर।
चरनदास गुरु ने कही, सहजो छिपा हजूर॥
आपा खोजे पाइये, और जतन नहिं कोय।
नीर छीर निर्ताय के, सहजो सुरति समोय॥[12]

परमात्मा का कोई रूप, कोई विशेष नाम नहीं है। वह तीनों गुणों और पाँचों तत्त्वों से परे है। वह प्रभु प्रत्येक जीव के अंदर गुप्त रूप में विराजमान है। मनुष्य अपने ही अंदर खोज करके उस प्रभु के साथ मिलाप कर सकता है। जिस प्रकार हंस दूध से पानी अलग कर लेता है, उसी प्रकार चेतन आत्मा जड़ शरीर से अलग होकर प्रभु के साथ मिलाप करने में समर्थ हो सकती है। यही भाव मीराबाई ने भी अपनी बानी में व्यक्त किया है:

मैं तो हरि चरणन की दासी, अब मैं काहे को जाऊं कासी।
घट ही में गंगा घट ही में जमना, घट घट हैं अबिनासी।[13]

वह प्रियतम घट-घट में समाया हुआ है। जिसे अपने अंदर प्रभु के दर्शन हो जाते हैं, उसे बाहर भटकने की क्या आवश्यकता है?

नैनों लख लैनी साईं तैंड़े हजूर।
आगे पीछे दहिने बायें, सकल रहा भरपूर॥
जिन को ज्ञान गुरू को नाहीं, सो जानत हैं दूर।
जोग जज्ञ तीरथ ब्रत साधै, पावत नाहीं कूर॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल जिमीं में, सोई हरि का नूर।
चरनदास गुरु मोहिं बतायौ, सहजो सब का मूर॥[14]

जिन्हें गुरु से ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, वे परमात्मा को दूर समझते हैं। वे उसकी तलाश में बाहर भटकते हैं, जबकि वह सर्वव्यापक प्रभु उनके अपने अंतर में है। वे तीर्थ-व्रत, योग-यज्ञ आदि अनेक प्रकार के बहिर्मुखी साधनों में फँसे रहते हैं। ऐसे नासमझ भाग्यहीन लोग प्रभु से मिलाप नहीं कर सकते। जो सतगुरु के बख़्शे ज्ञान द्वारा ध्यान को अंदर स्थिर कर लेते हैं, उनके ज्ञाननेत्र खुल जाते हैं, फिर उन्हें अंदर-बाहर हर जीव में प्रभु व्याप्त दिखायी देता है। उन्हें मृत्युलोक, स्वर्गलोक, पाताल अर्थात् हर जगह प्रभु का नूर दिखायी देता है। भाव यह है कि जो लोग दिव्यदृष्टि द्वारा अपने अंदर हरि के दर्शन कर लेते हैं, उन्हें हरि की सर्वव्यापकता का बोध हो जाता है, क्योंकि वह हाज़िर-नाज़िर है।

सहजोबाई जीव को प्रेरणा देती हैं कि नि:संदेह परमात्मा मन-इंद्रियों के स्तर पर अलख, अगम और अकथ है, परंतु आत्मा के स्तर पर उसके दर्शन कर पाना असंभव नहीं है। परमात्मा अकथनीय अवश्य है, परंतु उसके साथ मिलाप करना संभव है। जो व्यक्ति अपने ध्यान को अंतर में स्थिर कर लेता है, वह परमात्मा के साक्षात् दर्शन करने में सफल हो जाता है।

तेरी गति सब में जानी हो॥
बिधि निषेध करि देखा तो कूँ, लिया पिछानी हो॥
तत पद त्वं पद असि पद तूहीं, यह न लुकानी हो॥
तो बिन दूजा नेक न क्यों ही, यह मन आनी हो॥
चरनदास नहिं सहजो बाई, दुबिधा मानी हो॥[15]

सतगुरु की दया से जब जीव को 'विधि' और 'निषेध' अर्थात् करने योग्य और न करने योग्य कर्मों का ज्ञान हो जाता है, तो उसके आंतरिक नेत्र खुल जाते हैं और तब उसे प्रभु सर्वव्यापक दिखाई देता है। उसे उपनिषदों

में कहे गये महावाक्य 'तत् त्वम् असि' यानी 'वह परमशक्ति तुम हो' का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। संत-महात्मा समझाते हैं कि आत्मा के वास्तविक रूप की पहचान हो जाने पर परमात्मा के स्वरूप की भी पहचान हो जाती है। फिर जीव को ज्ञान हो जाता है कि आत्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व एक दूसरे से भिन्न नहीं, वास्तव में एक हैं।

नान्ह ही सरूप हयौ

दसौ दिसा देख तो कूँ और कोई नाहीं।
नख सिख राज रह्यो, वेदन के मद्ध कह्यो।
सूत रह्यो की माला भयो, ऐसे ही सब माहीं॥
सिंध हूँ की लहरैं जानौ, ता में सब पानी मानौ।
ऐसे नहिं दूजा ठानौ, साईं साईं साईं॥
ईसुर को रूप छयौ, ब्रह्मंड सब होइ रह्यो।
नान्ह ही सरूप हयौ, तेरी गति पाई॥
चरनदास गुरू दई, आतम बिचार लई।
सहजो बाई नाहिं रही, जैसे जल झाईं॥[16]

प्रभु दसों दिशाओं में हर जगह व्याप्त है। वेद भी यही कहते हैं कि वह रोम-रोम में समाया हुआ है। जिस प्रकार डोरी में मोती पिरोये जाने पर डोरी दिखाई नहीं देती उसी प्रकार प्रभु सारी सृष्टि में व्याप्त होकर भी अदृश्य है। समुद्र में अनेक लहरें होती हैं, परंतु पानी एक होता है। उसी तरह हर जगह वह प्रभु ही प्रभु है, सारा ब्रह्मांड प्रभु का ही रूप है। उस प्रभु की थाह पाने के लिए जीवात्मा को नन्हा अर्थात् सूक्ष्म स्वरूप धारण करना पड़ता है। सतगुरु के उपदेश द्वारा आत्मस्वरूप की पहचान करके, जीव पानी में पड़ रही परछाईं की तरह प्रभु में अभेद हो जाता है।

अनुभव ही सूँ जानिये

तुरिया इकरस आत्मा, इन तें परे निहार।
इन्द्री मन गहि ना सकै, सहजो तत्त अपार॥
जिभ्या चाखि सकै नहीं, स्रवन सुनै नहिं ताहि।
नैन बिलोकि सकै नहीं, नासा तुचा न पाय॥
अनुभव ही सूँ जानिये, चित बुधि थकि थकि जाहिं।
तीन भाँति हंकार की, सो भी पावै नाहिं॥
जाके रस नहिं रूप नहिं, गन्ध नहीं वा ठौर।
सब्द नहीं अस्पर्स नहिं, सहजो वह कछु और॥
गुन तीनों सूँ है परे, ता में रूप न रेख।
बोध रूप हो सहजिया, ब्रह्म दृष्टि करि देख॥[17]

प्रभु तीनों गुणों से ऊपर है और मन-इंद्रियों की पहुँच से भी परे है। वह रूप, रस, गंध, स्पर्श और किसी भी भाषा के शब्द से न्यारा है। वह बुद्धि और कल्पना से भी परे है। मन में प्रश्न उत्पन्न होता है फिर ऐसे प्रभु का ज्ञान कैसे हो?

सहजोबाई कहती हैं कि वह प्रभु केवल अनुभव का विषय है। उसका अनुभव इंद्रियों द्वारा नहीं, आत्मा द्वारा होता है। जब आत्मा मन-इंद्रियों, तीन गुणों और माया से ऊपर उठकर अहं से पूरी तरह मुक्त हो जाती है, तो इसे प्रभु से मिलाप की सदैव एकरस रहनेवाली अवस्था प्राप्त हो जाती है। उसकी दिव्यदृष्टि जाग्रत होने पर प्रभु के दर्शन हो जाते हैं।

अमर लोक पद फगुवा पैयै

मैं तो खेलूँ प्रभु के संग, होरी रंग भरी।
जित देखूँ तित रमि रहौ रे, सब में ब्यापक है हरी॥
सब कुछ भयो दियौ सुख जन कूँ, अद्भुत लीला है करी।
नाना जतन किये मिलवे कूँ, प्रीतम पायौ हम घरी॥
पावत ही सब भ्रम भय भागे, आवागवन छुटी लरी।

जीवन मुक्त भयौ मन मेरौ, ब्याधा सब आसा जरी॥
अमर लोक पद फगुवा पैयै, जनम मरन बिपता दली।
चरनदास गुरु किरपा कीन्ही, सहजो हिये आनँद रली॥[18]

जो प्रभु के संग प्रेम की होली खेलते हैं, उन्हें प्रभु सर्वव्यापक दिखायी देता है। प्रभु प्रत्येक घट में निवास करता है। जीव कई साधनों द्वारा उसे बाहर ढूँढ़ता है, परंतु प्रभु प्रियतम से साक्षात्कार अपने अंदर ही हो सकता है। उसके दर्शन करने से आवागमन से छुटकारा हो जाता है। उस प्रियतम के रंग न्यारे हैं। वह अपने भक्तों को सब सुख बख़्शता है। हर प्रकार के शोक-संताप और आशा-तृष्णा का नाश हो जाने पर जीव को सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है। अमरलोक में पहुँचकर प्रेम की होली खेलने से जन्म-मरण का दु:ख दूर हो जाता है। सतगुरु की कृपा से प्रभु के साथ मिलाप हो जाने पर परम आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

जहँ ब्रह्म अखंडित अति अनूप

मिलि गावो रे साधो यह बसंत। जाकी अविगत लीला अगम पंथ॥
जहँ नाँव पदारथ है इकंग। नहिं पैये दूजा और अंग॥
जहँ दरसै साधो एक एक। नहिं पैये दूजा कोई भेष॥
जहँ ज्ञान ध्यान को लगो तार। जहँ आप बिराजै ओंकार॥
देखो सब घट ब्यापक निराकार। कोई न पावै वह बिचार॥
जहँ ब्रह्म अखंडित अति अनूप। जाको सुरमुनि जोगी ध्यावै भूप॥
जहँ छाय रहो है सर्ब माहिं। कोइ नहिं संतो खाली ठाहिं॥
गुरु चरनदास पूरन औतार। जिन दान दियो जग ब्याध टार॥
सहजो बाई नावै सीस। मेरे भ्रम मेटे बिस्वाबीस॥[19]

प्रभु के धाम में जीवात्मा उस अविनाशी प्रभु की ही महिमा गाती है। वहाँ सदैव आनंदमय बसंत ऋतु रहती है। प्रभु की लीला अपरंपार है, उसका पंथ अगम है। उसका धाम नाम से भरपूर है। वह पूर्ण अद्वैत

का देश है, जहाँ द्वैत का नामो निशान नहीं है और ध्यान सदैव उसमें लीन रहता है। वहाँ योगी, मुनि, राजा-महाराजा सभी उस अविनाशी, अनुपम, निराकार, परमपुरुष का ही सुमिरन और ध्यान करते हैं। वह प्रभु सर्वव्यापक है, कोई स्थान उससे ख़ाली नहीं है। प्रभु पूरे सतगुरु के रूप में अवतार धारण करके जीव को भवसागर के दु:खों से मुक्त कर देते हैं, ऐसे सतगुरु के चरणों में नमन है, जो संशय और भ्रम के अंधकार का पूरी तरह नाश करके ज्ञान का प्रकाश बख़्श देते हैं।

मनुष्य-जन्म और प्रभुभक्ति

यह अवसर दुर्लभ मिलै, अचरज मनुषा देह।
लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥[1]

'यह अवसर दुर्लभ मिलै'—सहजोबाई मनुष्य-जन्म की विशेषता और महत्त्व बताते हुए कहती हैं कि मनुष्य-जन्म बहुत दुर्लभ है। चौरासी के चक्र की लंबी दु:खदायी भटकन के बाद यह अमूल्य वरदान मिला है। **'अचरज मनुषा देह'**—इतना ही नहीं, यह चौरासी लाख योनियों का सिरताज भी है। परमात्मा ने मनुष्य-शरीर का निर्माण अद्‌भुत कारीगरी से किया है। चौरासी लाख योनियों में विवेक की शक्ति केवल मनुष्य को प्रदान की गयी है। मनुष्य अपना भला-बुरा ख़ुद सोच सकता है, उचित-अनुचित का अंतर समझ सकता है और अपनी वर्तमान अवस्था में सुधार ला सकता है। विद्या, विज्ञान, कला और परमार्थ में उन्नति की जो संभावनाएँ मनुष्य को प्राप्त हैं, वे अन्य किसी योनि के जीव को उपलब्ध नहीं हैं।

'लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥'—मनुष्य-शरीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जीव इसमें बैठकर प्रभु की भक्ति करके प्रभु के साथ मिलाप कर सकता है। जो व्यक्ति आर्थिक, भौतिक और कलात्मक उन्नति करता है, परंतु परमात्मा के साथ मिलाप करने के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह मनुष्य-जन्म के दुर्लभ अवसर का वास्तविक लाभ नहीं उठा पाता।

वर्तमान अवस्था में मनुष्य अधूरा है। यह निर्बल और अज्ञानी, कर्म और कर्मफल के बंधन में जकड़ा हुआ है और दु:ख-सुख का शिकार बना रहता है।

लेकिन प्रभु की भक्ति करके यह आवागमन के बंधन से सदा के लिये मुक्त हो सकता है और प्रभु के साथ मिलाप करके उसी का रूप बन सकता है।

चौरासी जोनी भुगत, पायौ मनुष सरीर।
सहजो चूके भक्ति बिनु, फिर चौरासी पीर॥[2]

चौरासी भुगती घनी बहुत सही जम मार।
भरम फिरे तिहुँ लोक में तहू न मानी हार॥
तहू न मानी हार मुक्ति की चाह न कीन्ही।
हीरा देही पाय मोल माटी के दीन्ही॥
मूरख नर समझै नहीं समझाया बहु बार।
चरनदास कहैं सहजिया सुमिरै ना करतार॥[3]

चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद प्रभु की अपार कृपा से मनुष्य-जन्म का सुनहरा अवसर प्राप्त होता है। जीव इसे प्रभुभक्ति के बजाय विषय-भोगों में बरबाद कर देता है और इस जीवन को मिट्टी के मोल गँवा देता है। इसतरह वह बार-बार चौरासी के चक्र में दु:ख भोगता है, उसे यमदूतों की मार सहनी पड़ती है। ऐसे मूर्ख जीव को लाख बार क्यों न समझाया जाये, फिर भी उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। वह मुक्ति पाने के लिये प्रभुभक्ति की ओर क़दम तक नहीं उठाता।

इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्म की आव।
आगे तौ भी मरन है, सहजो सकल बहाव॥
राम नाम ले सहजिया, दीजै सर्ब अकोर।
तीन लोक के राज लों, अन्त जाहुगे छोर॥[4]

सहजोबाई कहती हैं कि मनुष्य-जन्म को पाने के लिए देवता भी तरसते हैं। भले ही इंद्र का सिंहासन प्राप्त हो जाये, ब्रह्मा जितनी आयु

और संपूर्ण त्रिलोकी का राज्य भी क्यों न मिल जाये, फिर भी जीव को अंत समय सबकुछ छोड़कर जाना पड़ता है। इसलिए समझदारी इसी में होगी कि वह इन सबका मोह त्यागकर प्रभु के नाम का धन इकट्ठा करे।

सब लोग धन-दौलत और ऊँची पदवियों के इच्छुक हैं। सहजोबाई सावधान करती हैं कि सच्चा सुख सुंदरता, धन या बादशाहत में नहीं, बल्कि प्रभु की भक्ति में है। संसार के सबसे सुंदर, सबसे धनाढ्य व्यक्ति का ही नहीं, राजा-महाराजाओं का जीवन भी प्रभुभक्ति के बिना निष्फल है।

सहजो जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप।
राम बिना धिर्कार है, सुन्दर धनवंत भूप॥[5]

'सहजो जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप।'–सहजोबाई ने यहाँ जीवात्मा को ऐंद्रिय सुखों और आत्मिक आनंद का अंतर समझाने का प्रयत्न किया है। स्वादिष्ट भोजन, कपड़े, आभूषण, बँगले, कारें, ललित कलाएँ, राग-रंग-तमाशे आदि शारीरिक और मानसिक सुखों के साधन हैं। आत्मिक शांति केवल प्रभु की भक्ति से ही मिलती है। शारीरिक सुख सुविधाएँ वर्जित नहीं हैं, परंतु इन्हें आत्मिक आनंद और मन की शांति का साधन समझ लेना भारी भूल है।

पानी का सा बुलबुला यह तन ऐसा होय।
पीव मिलन की ठानिये रहिये ना पड़ि सोय॥
रहिये ना पड़ि सोय बहुर नहिं मनुखा देही।
आपन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही॥
हरि कूँ भूले जो फिरैं सहजो जीवन छार।
सुखिया जब ही होयगो सुमिरैगो करतार॥[6]

मनुष्य-जन्म अद्भुत वरदान है–इस सत्य के साथ-साथ सहजोबाई हमारा ध्यान एक और सत्य की ओर ले जाते हुए कहती हैं कि यह पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। इसलिये इस अमूल्य अवसर को आलस्य, ग़फ़लत और अज्ञानता के कारण व्यर्थ बरबाद नहीं कर देना चाहिये।

मन में प्रभु के मिलाप का दृढ़ संकल्प करके इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तन-मन से संघर्ष करना चाहिये।

'बहुर नहिं मनुखा देही॥'–इस भ्रम का शिकार नहीं होना चाहिये कि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में परमात्मा से मिलाप कर लेंगे। कौन पूर्ण विश्वास से कह सकता है कि अगला जन्म मनुष्य का ही मिलेगा? जो व्यक्ति संत-महात्माओं के इस उपदेश में विश्वास रखता है कि मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य प्रभु के साथ मिलाप करके परम आनंद का अधिकारी बनना है, उसे प्रभुभक्ति की ओर क़दम उठाने के लिए देरी नहीं करनी चाहिये। एक दृष्टांत है:

एक व्यक्ति किसी तीर्थयात्रा पर जा रहा था। मार्ग में कोई महात्मा मिल गया। महात्मा ने यात्री से पूछा: भाई कहाँ जा रहे हो? यात्री ने तीर्थ का नाम बता दिया। महात्मा पूछने लगा कि उस तीर्थ पर स्नान करने का क्या फल है? यात्री ने उत्तर में कहा कि इससे मनुष्य-जन्म मिलता है। फिर महात्मा ने पूछा कि मनुष्य-जन्म का क्या लाभ है? यात्री कहने लगा, 'मनुष्य-जन्म में परमात्मा की भक्ति की जा सकती है।' महात्मा ने कहा: अरे भलेमानस! अब भी तो तू मनुष्य ही है! जो काम दोबारा मनुष्य-जन्म लेकर करना चाहता है, इस जन्म में ही क्यों नहीं कर लेता? इस बात का यात्री के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह तन-मन से प्रभुभक्ति में लग गया।

'आपन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही॥'–किसी प्रभुभक्त की सहायता से अपने अंतर में प्रभु की खोज करनी चाहिये, क्योंकि वह जीव के अंदर ही है। परमात्मा की तलाश में न तो धर्मस्थानों पर जाने की आवश्यकता है और न ही जंगलों-पहाड़ों, उजाड़ों-बियाबानों में भटकने की आवश्यकता है। किसी प्रभुभक्त के मार्गदर्शन द्वारा अपने शरीर के अंदर ही परमात्मा के साथ मिलाप किया जा सकता है।

'हरि कूँ भूले जो फिरैं सहजो जीवन छार।'–जो हरि को भूले बैठे हैं, उनका जीवन व्यर्थ चला जाता है। ***'सुखिया जब ही होयगो सुमिरैगो करतार॥'***–सच्चा और स्थायी सुख तभी मिलेगा जब जीव प्रभु की भक्ति में लगेगा।

स्वास खजानो जातु है, ता की सोधी नाहिं।
सहजो खर्चो का रह्यो, कर हिसाब घर माहिं॥
सहजो नौबत स्वास की, बाजत है दिन रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कूँ नहिं चैन॥[7]

मनुष्य इस संसार में साँसों की अमूल्य पूँजी लेकर आया है। इस पूँजी का वास्तविक उद्देश्य प्रभु की भक्ति का व्यापार करना है। अज्ञानतावश जीव यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि प्रत्येक साँस हीरे-पन्नों से भी अधिक मूल्यवान् है। लेकिन साँसों का नगाड़ा दिन-रात बज रहा है और यह पूँजी पल-पल घटती जा रही है। फिर भी अज्ञानी जीव निश्चिंत होकर सोया पड़ा है। इसके विपरीत ज्ञानी मनुष्य जिसे अपने जन्म के वास्तविक उद्देश्य की पहचान हो गयी है, उसकी सदा यही कोशिश होती है कि एक साँस भी प्रभुभक्ति के बिना व्यर्थ न चला जाये।

स्वासा दीपक के बुझे, होत अँधेरी देह।
सहजो सूनी प्रान बिनु, जब कैसो हरि नेह॥[8]

सहजो फिर पछितायगी, स्वास निकसि जब जाय।
जब लग रहै सरीर में, राम सुमिर गुन गाय॥[9]

बहुत गई थोड़ी रही, यह भी रहसी नाहिं।
जन्म जाय हरि भक्ति बिनु, सहजो झुर मन माहिं॥[10]

जब प्राणों का दीपक बुझ जाता है तो अंदर-बाहर अंधकार छा जाता है। उस समय प्रभु की भक्ति कर पाना असंभव है। बहुत-सी आयु बीत चुकी है, बाक़ी भी देखते-देखते बीत जायेगी, इसलिये जब तक साँसों का प्रवाह चल रहा है, हरदम नाम का सुमिरन करके प्रभु की भक्ति करनी चाहिये, नहीं तो अंत में पछतावे के सिवाय कुछ नहीं रह जाता।

उपजि उपजि फिर फिर मरौ, जम दे दारुन दुक्ख।
लाज नहीं सहजो कहै, धिर्ग तुम्हारो मुक्ख॥[11]

जन्म चलो ही जातु है, ये दिन आछे जाहिं।
जीवत जागह ना करी, बैठोगे केहि ठाहिं॥[12]

कर्मन के प्रेरे फिरौ, जन्म जन्म दुख होय।
मुक्ति बिचारो सहजिया, आवागवन जु खोय॥[13]

संत–महात्मा कभी प्रेम से, कभी चेतावनी देकर और कभी आग्रह से अपनी बात समझाते हैं, कभी–कभी कठोर शब्दों का प्रयोग करके भी जीव को सावधान करते हैं। यहाँ सहजोबाई चेतावनी देती हैं: जो व्यक्ति मनुष्य–जन्म को आवागमन के बंधन तोड़ने का साधन नहीं बनाता, उसे धिक्कार है।

जीव चिरकाल से कर्म और कर्मफल के कारण आवागमन के चक्र से बँधा हुआ है। वह बार–बार जन्म और मृत्यु की पीड़ा में से गुज़रते हुए अपने किये हुए कर्मों के फलस्वरूप दु:ख–सुख भोगता है। यह मृत्युलोक आत्मा का वास्तविक घर नहीं है और न ही शरीर उसकी वास्तविकता है। उसे यह शरीर प्रभुभक्ति द्वारा अपने वास्तविक घर पहुँचने के लिए बख़्शा गया है। सहजोबाई सावधान करती हैं कि यदि तुम जीते–जी मुक्ति प्राप्त करने की तैयारी नहीं करोगे, तो मृत्यु के बाद मुक्ति प्राप्त करने की आशा कैसे कर सकते हो?

जग में कहा कियौ तुम आय।
स्वान की ज्यों पेट भरि कै, सोवौ जन्म गँवाय॥
पहर पिछले नाहिं जागो, कियो ना सुभ कर्म।
आन मारग जाय लागो, लियो ना गुरु धर्म॥

जप न कीयो तप न साधो, दियो ना तैं दान।
बहुत उरझो मोह मद में, आपु काया मान॥
देह घर है मौत का रे, आन काढ़ै तोहि।
एक छिन नहिं रहन पावै, जब कैसे कुछ होय॥
रैन दिन आराम ना, काटै जो तेरी आव।
चरनदास कहैं सुन सहजिया, अब करौ भजन उपाव॥[14]

अज्ञानी जीव को चेतावनी देते हुए सहजोबाई कहती हैं: अरे भलेमानस! मन में सोचकर देख कि तूने संसार में आकर कौन–सा अच्छा कर्म किया है! पशुओं की तरह पेट भरकर और सोकर तुम ने अपना जन्म बरबाद कर लिया है। तुम ने प्रात: उठकर प्रभुभक्ति करने के बजाय व्यर्थ के धंधों में समय गँवा दिया। तुम अपने आपको शरीर समझने की अज्ञानता में फँसे रहे और अपनी आत्मा के कल्याण के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। तुम यह भी नहीं समझ पाये कि शरीर तो किराये का मकान है, मृत्यु का घर है। यमराज ने तुझे निश्चित समय से अधिक एक पल भी इस घर में नहीं रहने देना और धकेलकर बाहर निकाल देना है। उस समय तुझसे कुछ नहीं बन पायेगा। मृत्यु के बाद तुझे पलभर के लिए भी इसमें ठिकाना नहीं मिलना। इसलिये आज और अभी प्रभु के भजन–सुमिरन की ओर ध्यान दो।

जन्म मरन बंधन कटै, टूटै जम की फाँस।
राम नाम ले सहजिया, होय नहीं जग हाँस॥
चौरासी के दुख छुटैं, छप्पन नर्क तिरास।
राम नाम ले सहजिया, जम पुर मिलै न बास॥[15]

मनुष्य–जन्म से लाभ उठाकर प्रभु के नाम का अभ्यास करने से चौरासी के चक्र से छुटकारा मिल जायेगा, यमदूतों की मार नहीं सहनी पड़ेगी और

नरकों की यातनाओं से बचाव हो जायेगा। जीव को लोक-परलोक में ख़्वार नहीं होना पड़ेगा।

सात वार निर्नय

मनुष्य-जन्म का महत्त्व समझने की दृष्टि से सहजोबाई की बानी में उनके 'सात वार निर्नय' का विशेष स्थान है। उनके अनुसार मनुष्य जीवन सात वारों में विभाजित है। ये सात वार अनंत काल से एक दूसरे के पीछे चक्कर लगा रहे हैं। सात वार समय के चक्रमय प्रवाह के सूचक हैं। सहजोबाई ने सात वारों का वर्णन वार के नाम से शुरू किया है ताकि पाठक को उपदेश आसानी से याद रह सके।

मंगल माली राम है, जाका यह जग बाग।
निस दिन ताही में रहै, वा ही सेती लाग॥
वा ही सेती लाग, करी जिन यह गुलजारी।
पात पात की खबर, डाल सब लागै प्यारी॥
आपन ही कूँ जानि लै, वाही ठौर का फूल।
चरनदास कहै सहजिया, ऐसै समझो कूल॥[16]

सहजोबाई के अनुसार मंगलवार इस सत्य का प्रतीक है कि संसार रामरूपी माली का बाग़ है। वह माली बाग़ के पत्ते-पत्ते में समाया हुआ है। बाग़ नश्वर है, लेकिन माली अविनाशी है। इसलिए बाग़ से मोह करने के बजाय माली से प्रेम करना चाहिये। जो व्यक्ति संसाररूपी फुलवारी के रचयिता से प्रेम करता है, उसे फुलवाड़ी का पत्ता-पत्ता प्यारा लगता है। वह अपने आपको उस फुलवाड़ी का ही एक पत्ता समझता है। आत्मा प्रभु की अंश है, इसमें प्रभु के सभी गुण मौजूद हैं। इसलिए प्रभु की भक्ति द्वारा उन गुणों को प्रकट और विकसित करके अपने अंशी से एकरूप हो जाना चाहिये।

सहजोबाई ने ऊपर दो उपदेश दिये हैं: पहला यह कि संसाररूपी फुलवाड़ी से मोह करने के बजाय इसके सृजनहार से प्रेम करो। दूसरा यह कि फुलवाड़ी के हर पत्ते, हर डाली से प्रेम करो और अपने आपको भी फुलवाड़ी का एक फूल या पत्ता ही समझो। वर्तमान अवस्था में जीव जिन लोगों को अपना समझता है, उनके मोह में बँध जाता है तथा जिन्हें अपना नहीं समझता, उनसे प्रेम करना तो दूर, बल्कि ईर्ष्या और द्वेष करता है। प्रभु और उसकी सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के साथ समान रूप से प्रेम करना सब संतों के उपदेश का सार है।

बुध बारी में फल घने, जो पै देवै बाड़।
रखवारी के बिन किये, पाँचौ करै उजाड़॥
पाँचौ करै उजाड़, पचीसौ चरि चरि जाई।
सावधान जो होय, सोई वा के फल खाई॥
चरनदास कहै सहजिया, ऐसै समुझ बिचार।
तेरी काया में खिले, भाँति भाँति गुलजार॥[17]

बुधवार के बारे में सहजोबाई कहती हैं कि संपूर्ण ब्रह्मांड काया के अंदर है और ब्रह्मांड का सृजन करनेवाला प्रभु भी काया के अंदर है। बाग़ की रक्षा न की जाये तो पशु-पक्षी बाग़ उजाड़ देते हैं तथा उससे फल प्राप्त नहीं हो सकते। इसी तरह पाँच विकार और पाँच तत्त्वों की पाँच-पाँच प्रकृतियाँ हर पल इस बुध यानी ज्ञान की फुलवारी को उजाड़ रही हैं। हालाँकि शरीर के अंदर निरंतर नाम का अमृत बरस रहा है, लेकिन इस रहस्य से अनजान जीव को विषय-विकार नष्ट करते जा रहे हैं। जीव को चाहिये कि सावधान होकर प्रभु की भक्ति में लगे, ताकि विषय-विकारों से छुटकारा पा ले और शरीररूपी बाग़ में से प्रभुभक्ति और प्रभु के साथ मिलाप के मीठे रस भरे फल प्राप्त कर सके।

बृहस्पति वारी आइया, पाई मनुषा देह।
सो तन छिन छिन घटत है, भयौ जात है खेह॥
भयो जात है खेह, बहुरि लाहा कब लैहौ।
बेगहिं समुझ सँभार, नहीं बहुतै पछितैहौ॥
आगा पीछा क्या करै, सकल बासना त्याग।
चरनदास कहै सहजिया, हरि सुमिरन कूँ लाग॥[18]

'बृहस्पति वारी आया' इस महत्त्वपूर्ण चेतावनी का प्रतीक है कि जीव को एहसास हो जाना चाहिये कि चौरासी के दु:ख भोगने के बाद सौभाग्य से मिला मनुष्य-जन्म परमात्मा के साथ मिलाप का सुनहरा अवसर है। अगर इस अवसर का लाभ नहीं उठाया तो प्रभु के साथ मिलाप का कार्य कैसे पूरा होगा? अंत में बहुत पछतावा होगा, इसलिये आलस्य और ग़फ़लत को त्यागकर हर पल प्रभु के नाम का सुमिरन करना चाहिये।

सुक्कर सर उपदेस का, लगा कलेजे नाहिं।
ते नर पसू समान हैं, या दुनियाँ के माहिं॥
या दुनियाँ के माहिं, सदा चक्कर में डोलैं।
आवा गौन दुख महा, तासु की गाँठि न खोलैं॥
ऐसे मूरख बावरे, भोंदू मुग्ध गँवार॥
चरनदास कहै सहजिया, भरमैं बारम्बार॥[19]

सहजोबाई शुक्रवार को भी चेतावनी दिवस के रूप में बयान करती हैं: जिन लोगों को मनुष्य-जन्म पाकर इस पवित्र उपदेश का तीर नहीं लगा इस बात की सूझ नहीं हुई कि यह दुर्लभ अवसर परमात्मा की प्राप्ति के लिए मिला है, वे मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं। ऐसे मूर्ख लोग पशुओं के समान खाने, पीने, सोने, संतान पैदा करने आदि

में ही मनुष्य-जन्म बरबाद कर लेते हैं। ऐसे अज्ञानी जीव बार-बार जन्म लेते हैं, बार-बार मरते हैं। उनकी चौरासी की भटकन कभी समाप्त नहीं होती।

थावर थिर करतार है, और सकल मिटि जाय।
जा तें सूमति प्रीति करि, रहते चित्त लगाय॥
रहते चित्त लगाय, तासु ने जग उपजाया।
वा की सरनै आय, करै बहु बिधि की छाया॥
ऐसा हरि का नाम है, जनम मरन मिटि जाय।
चरनदास कहै सहजिया, साचे सूँ लौ लाय॥[20]

राजस्थानी भाषा में शनिवार को थावर कहते हैं। शनिवार का संदेश है कि अब जीव को संसार की वास्तविकता को मुख्य रखते हुए अपने असली कार्य में लग जाना चाहिये। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है, केवल परमात्मा ही थावर, थिर और अविनाशी है। इसलिए नाशवान् वस्तुओं का मोह त्यागकर अविनाशी प्रभु से प्रेम करो, जो जीव और संसार का सृजनहार है। वह निश्चल तथा अविनाशी प्रभु सदा जीव की रक्षा और सँभाल करता है। उसके नाम की आराधना द्वारा जन्म-मरण के बंधन कट जाते हैं। इसलिए झूठे जगत् का मोह त्यागकर सच्चे प्रभु के साथ प्रेम करना चाहिये।

एत जो आये जगत में, हरि सुमिरन के काज।
ह्याँ कुछ कीया और ही, नेक न आई लाज॥
नेक न आई लाज, साज सब खोटे कीन्हे।
सदा रहे अज्ञान, राम घट में नहिं चीन्हे॥
जैहौ जनम गँवाय के, पछितावा रहि जाय।
चरनदास कहै सहजिया, कहा कियौ तन पाय॥[21]

एतवार का संदेश है कि अब जीव इस जगत् में प्रभु की भक्ति का कार्य पूर्ण करने के लिए आया है। यहाँ आकर इसने प्रभु की ओर से सौंपा गया कार्य भुला दिया और मन के अधीन होकर अनेक बुरे कर्म करता रहता है। इस प्रकार यह निर्लज्ज अज्ञानी जीव अपने अंदर बैठे प्रभु के साथ लिव जोड़ने के बजाय व्यर्थ के कार्यों में जन्म बरबाद कर लेता है। बड़े दु:ख की बात है कि ग़ाफ़िल (अचेत) जीव मनुष्य-जन्म का वास्तविक लाभ नहीं उठाता। अंत समय सिवाय पछतावे के कुछ हाथ नहीं आता। सहजोबाई यहाँ जीव को उसके जीवन के असली उद्देश्य के प्रति जाग्रत कर रही हैं।

सोम सिरीपति सेइये, गुरु की आयस लेय।
सतसंगति अचरज कथा, ताही में मन देय॥
ताही में मन देय, और ऊँचा नहिं या तें।
और सकल धर्म उरै, सभी थोथी है बातैं॥
चरनदास कहै सहजिया, भक्ति सिरोमनि जान।
तन धन चित बुध प्रान कूँ, ता में दीजै आन॥[22]

'सोम' अर्थात् चन्द्रमा मन का प्रतीक है। सोमवार से यह संदेश मिलता है कि जीव को मनुष्य-जन्म पाकर संतों की संगति करके प्रभु का अचरज भरा भेद पा लेना चाहिये और उनकी शिक्षा के अनुसार पूरे मन से परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये। यही सबसे ऊँचा धर्म है, यही सबसे श्रेष्ठ कर्म है। बाक़ी सब कुछ इससे नीचे है। इसलिए तन, मन, धन, बुद्धि और जी-जान से प्रभु की भक्ति में लग जाना चाहिये।

सात वार ये मैं कहे, जा में हरि का भेद।
जो कोइ समुझै प्रीति सूँ, छूटै सबही खेद॥
सातो वारों बीच में, जग उपजै मिटि जाय।
सहजो बाई हरि जपौ, आवागवन नसाय॥[23]

सहजोबाई ने सात वारों में प्रभु मिलाप के साधन पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जो जीव प्रेम और विश्वास से इस उपदेश पर अमल करेगा, उसके सभी भ्रम और दु:ख दूर हो जायेंगे। संसार के सब लोग सातों वारों में जन्म लेते और मरते हैं। प्रत्येक वार में यानी हर रोज़, साँस-साँस प्रभु की भक्ति करनी चाहिये, ताकि आवागमन की फाँसी कट जाये और प्रभु के साथ मिलाप हो जाये।

आयौ बसंत धन मेरे भाग

आयौ बसंत धन मेरे भाग। पाँचौ गावैं एक राग॥
और पचीसौं उनके संग। सो भी भींगे सरस रंग॥
मतवारे भये मन से भूप। सखि बिसरीं सब अपना रूप॥
नगर लोग नहिं तन सँभार। मगन भये सब वार वार
कह्यो न जाय उपज्यो अनन्द। और खेल सब भये मन्द॥
तिरबेनी तट करि बिहार। पीवत बैठे अमी धार॥
जोति बाल पूजे सुदेव। अगम अगोचर पायौ भेव॥
सीस भेंट जो दीन्हो जाय। दरसन कीन्हे अति अघाय॥
चरनदास गुरु दई सैन। सहजो बाई पायो चैन॥[24]

जो जीव सप्ताह के सातों वार यानी हर रोज़ प्रभुभक्ति में लीन रहता है, उसके अंतर में सदा बसंत ऋतु का दिव्य आनंद रहता है, क्योंकि जो पाँच इंद्रियाँ और पच्चीस प्रकृतियाँ मन को बाहर की ओर खींचकर विषय-विकारों में व्यस्त थीं, वे प्रभुभक्ति द्वारा प्रभुप्रेम के रंग में रँग जाती हैं। फिर मन और इंद्रियों की अवस्था में बदलाव आ जाता है। मनरूपी राजा प्रेम में मग्न होकर अंदर टिक जाता है। मन में प्रभु के प्रेम का ऐसा अद्भुत आनंद उत्पन्न हो जाता है कि उसे इंद्रियों के भोगों की परवाह नहीं रहती। तीसरे आंतरिक मंडल में, जिसे संतों ने पारब्रह्म, दसवाँ द्वार, त्रिवेणी, मानसरोवर, प्रयागराज, अमृतसर आदि कहा है,

नामरूपी अमृत के सरोवर में स्नान करने से आत्मा निर्मल हो जाती है। वह आंतरिक प्रकाश में अपने सच्चे स्वामी की आराधना करती है और अगम अगोचर प्रभु का भेद पा लेती है। सतगुरु की दीक्षा पर अमल करते हुए जो जीव अपना आपाभाव गुरु के चरणों में भेंट कर देता है, वह प्रभु के दर्शनों का सौभाग्य और सच्ची शांति प्राप्त कर लेता है।

शरीर और संसार की वास्तविकता

झूठा नाता जगत का, झूठा है घर बास।
यह तन झूठा देख कर, सहजो भई उदास॥[1]

सहजोबाई ने मनुष्य को संसार की नश्वरता के बारे में भी सावधान किया है। वे चेतावनी देती हैं: यह संसार नश्वर है, इसलिए इसके सभी रिश्ते-नाते, रूप तथा पदार्थ भी झूठे और नश्वर हैं। इन्हें सत्य समझकर इनके मोह का शिकार होनेवाला शरीर भी सदा नहीं रहता। कितने दु:ख की बात है कि जीव झूठे शरीर और झूठे जगत् के मोह में फँसकर सच्चे और अविनाशी प्रभु को भुला देता है।

इसी प्रसंग में संत चरनदास जी ने कहा है:

मिटते सूँ मत प्रीत करि, रहते सूँ करि नेह।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साँचे में करि गेह॥[2]

महाभारत में वृत्तांत आता है कि यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया: संसार में सबसे अधिक अचंभे की बात कौन-सी है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, 'सबसे अधिक अचंभा इस बात का है कि लोग दूसरों की मृत्यु देखते हैं, परंतु उन्हें यह भ्रम है कि शायद उनकी अपनी मृत्यु कभी नहीं होगी।' यही कारण है कि संत-महात्मा अज्ञानता की नींद में सोये जीव को बार-बार सचेत करते हुए शरीर और संसार की अनित्यता को समझने की प्रेरणा देते हैं।

नश्वर शरीर

देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
दुइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त॥
जो तेरा हित देह सूँ, नख सिख ताही खंड।
जीव अमर सहजो कहै, ब्यापक और अखंड॥[3]

चौरासी लाख योनियों में मनुष्य ही विवेकशील प्राणी है, इसलिये मनुष्य को अपने कल्याण के बारे में गहराई से विचार करना चाहिये। उसे झूठे क्षणिक लाभ और सच्चे स्थायी लाभ, इन दोनों के अंतर को समझना चाहिये। यह एक अटल सत्य है कि शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अमर-अविनाशी, ज्ञानरूप और आनंदरूप है। जब शरीर ही नश्वर है, तो शारीरिक भोग भी क्षणभंगुर हैं और इनका सुख भी क्षणिक है। ये क्षणिक सुख ही जीवात्मा के सब दु:खों का मूल कारण हैं। विषय-विकारों में लिप्त जीव मनचाहे कर्म करता है। सहजोबाई समझाती हैं कि नश्वर शरीर को वास्तविक समझने के बजाय अविनाशी आत्मा तू अपना वास्तविक स्वरूप समझ, क्योंकि इसी में तेरा कल्याण और उद्धार है।

यों खाता यों सोवता, मीठे कहता बोल।
यह बिचार तू मत करै, चित रहै डाँवाडोल॥
बैठि पहिरि यों चालता, बस्तर भूषन लाल।
यह बिचार तू मत करै, छल रूपी जग जाल॥[4]

स्वादिष्ट भोजन, सुंदर कपड़े, हीरे-मोतियों से जड़े क़ीमती गहने आदि को सुख का साधन समझकर मनुष्य इनकी ओर दौड़ता है। **'चित रहै डाँवाडोल॥'**—वह बाहरी तौर पर बहुत सुखी प्रतीत होता है, परंतु उसका चित्त सदा अशांत रहता है। मन में हमेशा यह भय बना रहता है कि ये सुख कहीं साथ न छोड़ जायें। पहले माया इकट्ठी करने के लिए

लंबे दु:खदायी संघर्ष में से गुज़रना पड़ा है, फिर इसके चले जाने की चिंता हर समय मन को परेशान करती है।

'यह बिचार तू मत करै, छल रूपी जग जाल॥' —जीव इस रहस्य से अनजान है कि जिन भोगों को वह सुख का साधन समझ रहा है, वह वास्तव में माया का विशाल और शक्तिशाली जाल है, जो उसे त्रिलोकी और आवागमन में बाँधकर रखने के लिए बिछाया गया है। हालाँकि आत्मा ख़ुद अजन्मा और कर्मरहित है, परंतु मन-इंद्रियों के अधीन होकर यह भी मायामय भोग भोगती है और वे उसे आवागमन के एक बहुत जटिल जाल में बाँध देते हैं। जो व्यक्ति ख़ुशी-ख़ुशी शत्रु की चाल में फँस जाये और घोर दु:खों का कारण बननेवाले भोगों को सुख का साधन समझने की अज्ञानता कर बैठे, वह सचमुच दया का पात्र है। जो स्वयं अपने गले में फाँसी का फँदा डाले या ख़ुद अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारे, उसे कौन विवेकशील कहेगा?

कभुवक तेरा बाप है, कभुवक तेरा पूत।
कभुवक तेरा मित्र है, कभुवक तेरा सूत॥
जो तेरे सँग प्यार था, जाता वाके साथ।
कै वाही कूँ राखता, सहजो गहि कर हाथ॥[5]

सहजोबाई समझाती हैं कि अज्ञानी जीव माता-पिता, भाई-बहनों, यार-दोस्तों को अपने सच्चे साथी और हितैषी समझकर उनके मोह का शिकार हो जाता है। वह यह सोचने का प्रयास नहीं करता कि माता-पिता, बेटे-बेटियों से जो भी रिश्ता है, वह इस जीवनकाल तक ही है। अगर इनके साथ सच्चा रिश्ता होता तो वे अंत समय जीव के साथ चलते। यदि मनुष्य मरनेवालों के साथ जा सकता या मरनेवालों की आत्मा को जाने से रोक सकता, तो उसकी उनके साथ मोह करने की बात जायज़ मानी जा सकती थी। लेकिन आज तक कभी कोई जानेवालों के साथ नहीं गया और न ही उन्हें जाने से रोक सका है। इसलिये ऐसे कच्चे और

क्षणभंगुर संबंधों के मोह में फँसकर प्रभुरूपी सच्चे और पक्के संबंधी को बिसार देना कहाँ की बुद्धिमानी है?

आगे रो रो क्या किया, अब क्यों रोवै भाँड।
संग न आया ना चलै, यह जग झूठी माँड॥
आगे मुए सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
सहजो पर कूँ क्या झुरै, आपन ही कूँ रोय॥[6]

इसी प्रसंग में सहजोबाई आगे कहती हैं: हे भलेमानस! आजतक तूने अनेक बार संबंधियों के मरने पर विलाप किया। उसका क्या लाभ हुआ? अब तक तो तुझे संसार की रीति का ज्ञान हो जाना चाहिये था कि न कोई मित्र-संबंधी किसी के साथ आता है और न ही साथ जाता है। जब यह रचना ही झूठी है तो इसके सब रिश्ते-नाते भी झूठे हैं। तेरे से पहले आये यहाँ सदा रह नहीं सके और न ही तू सदा के लिए यहाँ रह सकेगा। इसलिए दूसरों की मृत्यु पर विलाप करने के बजाय उस दिन के बारे में विचार कर, जिस दिन तू भी मृत्यु का शिकार हो जायेगा और तेरे संबंधी तेरी कोई सहायता नहीं कर पायेंगे।

आपन हूँ थिर होहिं जो, करैं और को सोग।
सहजो साथी नाव के, सभी बटाऊ लोग॥[7]

बैठि बैठि बहुतक गये, जग तरवर की छाँहि।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि मिलि बिछुड़त जाहिं॥[8]

सहजोबाई तर्क देते हुए कहती हैं कि जिसने स्वयं कभी न मरना हो, वह अपने मित्रों और संबंधियों के मर जाने पर दु:खी हो तो और बात है। जिसने ख़ुद देर-सवेर मृत्यु का शिकार हो जाना है, उसका दूसरों की मृत्यु पर रोना-चिल्लाना समझ से बाहर है। दरिया से पार जाने के लिए यात्री

नौका में सवार होते हैं। दूसरे किनारे पर पहुँचकर वे अपने-अपने रास्ते पर चले जाते हैं। कोई किसी के बिछुड़ने पर दु:खी नहीं होता। मनुष्य का एक-दूसरे के साथ संबंध नौका में सवार अन्य यात्रियों जैसा ही है।

वृक्ष की छाया के नीचे आराम करने के लिए एकत्रित हुए यात्री वृक्ष को ही अपना घर नहीं समझ लेते। संसार में सगे-संबंधियों का साथ भी बिलकुल ऐसा ही है। यह साथ कुछ समय के लिये ही है।

यह रस्ता बहता रहै, थमै नहीं छिन एक।
बहु आवैं बहु जातु है, सहजो आँखन देख॥[9]

यह संसार एक पगडंडी के समान है जहाँ लोगों के आने-जाने का सिलसिला चलता रहता है, एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता। सहजोबाई कहती हैं कि हम इस सत्य को प्रत्यक्ष देखते हैं कि यहाँ लोग निरंतर जन्म ले रहे हैं और मर रहे हैं। फिर भी इसे अपना स्थायी घर समझ लेना भारी अज्ञानता है। नीचे दिये गये दृष्टांत से भी यही स्पष्ट होता है।

पुराणों में मार्कण्डेय ऋषि की आयु सबसे लंबी मानी गयी है। वे अपने सिर पर तिनके रखते थे। जब कोई कहता कि ऋषि जी! अपने लिए कुटिया बनवा लो, तो ऋषि जी उत्तर देते कि कुटिया तभी बनायें अगर यहाँ सदा रहना हो।

हिरनाकुस से ह्वै मिटे, दुर्जोधन सिसुपाल।
कुंभकरन रावन गये, सहजो खाया काल॥
निस्चै मरना सहजिया, जीवन की नहिं आस।
कै टूटी सी झोपड़ी, कै मन्दिर में बास॥
कै गरीब सिर टोकरी, कै सिर छत्तर होय।
जन्म मरन में एक से, सहजो भाँति न दोय॥[10]

मृत्यु केवल ग़रीबों और निर्बलों की ही नहीं होती, क्या राजा-महाराजा और क्या महाबली योद्धा—सब इसका शिकार हो जाते हैं। हिरण्यकशिपु ने यह वर लिया था कि उसकी मृत्यु न अंदर हो न बाहर, वह न अस्त्र से मरे न शस्त्र से, न वह मनुष्य के हाथों मरे न पशु के, न दिन में न रात में। इसके बावजूद वह मृत्यु का शिकार हो गया। धृतराष्ट्र के बड़े पुत्र दुर्योधन को अपने राजपाट, शक्ति और भारी सेना का बहुत अभिमान था। फिर भी वह मृत्यु का शिकार हो गया। चार वेदों का ज्ञाता महाबली रावण भी मृत्यु के वार से न बच सका। उसका शूरवीर भाई कुम्भकर्ण भी मृत्यु का ग्रास बन गया। शिशुपाल जैसा अभिमानी दुष्ट जो भगवान् श्रीकृष्ण का निंदक था, वह भी काल का शिकार हो गया। मृत्यु के सामने राजा और रंक, निर्बल और सबल, धनवान् और निर्धन, विद्वान् और अनपढ़ किसी की नहीं चलती। सहजोबाई उपदेश देती हैं कि जब हर कोई संसार में कुछ दिनों का अतिथि है, तो कोई चाहे टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहता हो या महलों में, सभी एक समान हैं। चाहे सिर पर भार ढोनेवाला ग़रीब हो या मुकुट धारण करनेवाला राजा, सब एक जैसे हैं।

मुए सो काया जारई, बहुरि न मिलिहै आय।
रोये तें कहा होत है, सहजो झुरै बलाय॥
झुरि झुरि के पिंजर भये, रोय गँवाये नैन।
मरे गये सो ना मिले, सहजो सुने न बैन॥[11]

हमारा कोई कितना ही प्यारा और नज़दीकी संबंधी क्यों न हो, मृत्यु के बाद हमारे प्रियजनों का शरीर अग्नि की भेंट कर दिया जाता है। हाँ, रोनेवाला विलाप ज़रूर करता है, पर उसे हासिल कुछ नहीं होता। मृतक के संबंधी चाहे कितना विलाप कर लें और उसकी याद में रो-रोकर अपनी आँखें गँवा लें, हड्डियों का पिंजर हो जायें, लेकिन जो मर गया, जो चला गया, उसे इन सबसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

जो रोये सूँ बाहुरै, तौ रोवौ दिन रात।
तन छीजै वह न मिलै, सहजो कूड़ी बात॥
काहे कूँ रोवत रहौ, कल्प न होवै काज।
सहजो मुए सो मरि गये, आवैं काल्ह न आज॥[12]

यदि किसी के विलाप करने से मृतक वापस आ सकता हो तो अवश्य विलाप करना चाहिये। परंतु सच्चाई यही है कि चाहे कितना ही रोते-चिल्लाते रहें, मृतक कभी वापस नहीं आ सकता।

जग देखत तुम जावगे, तुम देखत जग जाय।
सहजो योंही रीति है, मत कर सोच उपाय॥[13]

जिस प्रकार हमारे देखते-देखते कई लोग परलोक सिधार रहे हैं, उसी प्रकार दूसरों के देखते-देखते हम भी यहाँ से चले जायेंगे। अनंत काल से संसार में जन्म-मरण का यह खेल चलता आ रहा है। हमसे पहले आये यहाँ सदा के लिये नहीं रह सके और न हम सदा के लिए यहाँ रह सकेंगे। इसलिए इस चक्र में उलझे रहने के बजाय इससे छूटने का प्रयत्न करें।

संत-महात्माओं का वास्तविक उद्देश्य जीव को शरीर और संसार की नश्वरता के प्रति सावधान करते हुए उसका ध्यान अविनाशी प्रभु की ओर ख़ींचना होता है।

जगत् झूठा है

सहजोबाई ने अपनी बानी के एक पूरे प्रसंग में इस भाव पर प्रकाश डाला है कि यह संसार सच्चा और स्थायी होने का भ्रम उत्पन्न करता है, परंतु वास्तव में झूठा और क्षणभंगुर है।

आतम में जागत नहीं, सुपने सोवत लोग।
सहजो सुपने होत हैं, रोग भोग और जोग॥[14]

कोटि बरस इक छिन लगै, ज्ञान दृष्टि जो होय।
बिसरि जगत औरै बनै, सहजो सुपने सोय॥[15]

सहजो सुपने एक पल, बीतै बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घर बास॥[16]

ऐसे ही सब स्वप्न है, स्वर्ग मिर्तु पाताल।
तीन लोक छल रूप है, सहजो इन्दरजाल॥[17]

जीव स्वप्न में जो भी देखता या करता है, उसे वह सबकुछ तब तक सत्य प्रतीत होता है जब तक वह सोया है। ठीक इसी तरह जीव को संसार में सबकुछ तब तक सत्य प्रतीत होता है, जब तक वह अपने आत्मिक स्वरूप के प्रति सचेत नहीं होता। उसे इस दुनिया के रोग-भोग, मेल-मिलाप सत्य प्रतीत होते हैं। जैसे स्वप्न में पचास साल का लंबा समय कुछ क्षणों में व्यतीत हो जाता है, उसी तरह जब अज्ञानता दूर होती है, तो संसार में लंबे समय का निवास क्षणभर का प्रतीत होता है। स्वप्न टूटने पर उसकी असलियत का पता चलता है। सच्चाई प्रकट होने पर उसे संसार के पदार्थ जो सत्य प्रतीत होते थे, उनका भ्रम दूर हो जाता है। वह समझ जाता है कि शरीर में वास एक स्वप्न ही था। सहजोबाई जीव की ऐसी अवस्था देखते हुए कहती हैं कि वर्तमान अवस्था स्वप्न के समान है जिसमें मृत्युलोक, स्वर्गलोक और पाताल सत्य प्रतीत होते हैं। लेकिन जब जीवात्मा तीनों लोकों से ऊपर उठ जाती है, तो उसे ज्ञान हो जाता है कि संपूर्ण त्रिलोकी जीव को बहकाने के लिये रचा गया एक मिथ्या जाल है।

सहजोबाई ने अनेक दृष्टांत देकर इस जगत् की नश्वरता को सिद्ध किया है।

मृग तृस्ना जल साँच है, जब लग निकट न जाय।
सहजो तब लग जग बन्यौ, सतगुरु दृष्टि न पाय॥[18]

जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं॥[19]

जिस प्रकार रेगिस्तान में दिखाई देनेवाला मृगतृष्णा का जल तब तक सत्य प्रतीत होता है, जब तक कोई उसके निकट नहीं जाता, उसी प्रकार जब तक जीव को सतगुरु से ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं होती, उसे यह जगत् सत्य प्रतीत होता है।

जिस प्रकार सुबह दिखायी देनेवाले तारे अधिक समय तक नहीं रहते, सूर्य के निकलते ही अदृश्य हो जाते हैं, उसी प्रकार यह संसार भी अस्थायी है। पौधे के ऊपर पड़ी ओस की बूँदें मोतियों के समान प्रतीत होती हैं। उन्हें मुट्ठी में बंद कर लें तो मोती नहीं, केवल पानी रह जाता है। ओस की बूँदें पलभर की मेहमान होती हैं, सूर्य के निकलते ही लुप्त हो जाती हैं। अंजलि में रखा पानी धीरे-धीरे बह जाता है, अधिक देर तक नहीं रहता। संसार और इसके पदार्थों की भी यही वास्तविकता है।

धूवाँ कौ सो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय।
झाँई माई सहजिया, कबहूँ साँच न होय॥[20]

संसार धुएँ के क़िले के समान है। धुएँ से बने क़िले में राजसिंहासन पर बैठने का स्वप्न कभी सत्य नहीं हो सकता। इसमें स्थायी ठिकाना बनाना असंभव है। जिस प्रकार परछाई की कोई वास्तविकता नहीं होती, उसी प्रकार इस संसार की भी कोई वास्तविकता नहीं है।

ज्ञानी को जग झूठ है, अज्ञानी कूँ साँच।
कोटि लाल कागद लिखे, सहजो बैठा बाँच॥[21]

अज्ञानी जानत नहीं, लिप्त भया करि भोग।
ज्ञानी तौ दृष्टा भये, सहजो खुसी न सोग॥[22]

ऐसे ही जग झूठ है, आतम कूँ नित जान।
सहजो काल न खा सकै, ऐसो रूप पिछान॥[23]

अज्ञानी मनुष्य इस संसार को सत्य समझता है। वह किताबें, ग्रंथ आदि लिखकर लोगों को तो ज्ञान देता है और ख़ुद विषय-भोगों में लिप्त रहता है। लेकिन जिसे अपने अंतर में परमात्मा का ज्ञान हो जाता है, वह संसार की वास्तविकता को प्रत्यक्ष देख लेता है। वह सुख-दु:ख की अवस्था से ऊपर उठ जाता है। काल उसे अपना ग्रास नहीं बना सकता।

जैसे बालक जल बिषे, देखि देखि डरपाय।
समझ भई जब भर्म था, सहजो रहै खिसाय॥[24]

जैसे बच्चा पानी में अपनी परछाईं देखकर डर जाता है, लेकिन जब उसे वास्तविकता का पता चलता है तो उसका डर दूर हो जाता है—इसी प्रकार अज्ञानी जीव भवसागर से डरता है। जब इसे संसार से पार हो जाने के साधन का ज्ञान हो जाता है, तो उसे यह बोध हो जाता है कि संसार एक भ्रम है, तब वह अपनी नासमझी पर लज्जित होता है। फिर भ्रम तथा भय पंख लगाकर उड़ जाते हैं।

हरि हर जप लेनी औसर बीतो जाय।
जो दिन गये सो फिर नहिं आवैं, कर बिचार मन लाय॥
या जग बाजी साच न जानो, ता में मत भरमाय।
कोइ किसी का है नहिं बौरे, नाहक लियौ लगाय॥
अंत समय कोइ काम न आवै, जब जम देहि बोलाय।
चरनदास कहैं सहजो बाई, सत संगत सरनाय॥[25]

सहजोबाई कहती हैं: मेरे गुरु चरनदास जी का उपदेश है कि मनुष्य-जन्म का अमूल्य समय शीघ्रता से बीता जा रहा है। बीत चुका समय दोबारा

वापस नहीं आनेवाला और न ही मनुष्य-जन्म का अमूल्य अवसर बार-बार मिलनेवाला है। संसार मदारी के खेल के समान है। इसे सत्य समझने के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। अंत समय जब यमदूत लेने आ जाते हैं, तो न संसार की कोई वस्तु साथ जाती है और न ही कोई मित्र-संबंधी सहायता कर सकता है। हमें संतों की शरण प्राप्त करके प्रभुभक्ति में लगना चाहिये, ताकि संसार में आने का उद्देश्य पूरा करके अपना अनमोल जन्म सफल कर लिया जाये।

सहजो भज हरि नाम कूँ, तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोइ है नहीं, अपनी सगी न देह॥[26]

मन माहीं बैराग है, ब्रह्म माहिं गलतान।
सहजो जगत अनित्य है, आतम कूँ नित जान॥[27]

सहजोबाई जीव को प्रभु भक्ति के लिये प्रेरणा देती हैं कि जब संसार के भोग और संबंध क्षणभंगुर हैं और यह शरीर जिसे हम अपना समझते हैं, वह भी सच्चा और स्थायी नहीं है, तो इसे जगत् का मोह त्यागकर परमात्मा के नाम की आराधना करनी चाहिये। जब यह प्रभुभक्ति में लीन हो जाता है तो मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। तब इसे ज्ञान होता है कि यह संसार नाशवान् है, स्थायी केवल आत्मा है।

संतजन यह नहीं कहते कि संसार के कामकाज छोड़ दो या अपनी शारीरिक ज़रूरतों की तरफ़ ध्यान न दो। न ही वे घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारियों से मुँह मोड़ने का उपदेश देते हैं। वे समझाते हैं कि मनुष्य-जन्म का मुख्य उद्देश्य प्रभु की भक्ति करके उससे मिलाप करना है। इसलिये प्रभु की भक्ति को प्राथमिकता देकर संसार में आने का अपना मुख्य उद्देश्य पूरा करना चाहिये।

इसके विपरीत जो जीव इस मायामय संसार के सुख भोगने में ही व्यस्त रहेगा, वह इस संसाररूपी जेलखाने का क़ैदी ही बना रहेगा और अपने परमधाम के स्थायी सुख और परम आनंद से वंचित रह जायेगा।

कर्म और कर्मफल

सृष्टि के सभी प्राणी कर्मफल के अधीन हैं। चौरासी लाख योनियाँ कर्मफल भुगतने के लिये ही हैं। कुछ कर्मों का फल तत्काल मिल जाता है, लेकिन कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जिनका फल अगले जन्मों में भुगतना पड़ता है। पूर्वजन्मों के जिन कर्मों का फल मनुष्य इस जन्म में भोग रहा है, वे प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। प्रारब्ध को भोगता हुआ वह जो नये कर्म करता जाता है, वे क्रियमान कर्म कहलाते हैं और पूर्वजन्मों के अनभोगे कर्मों को संचित कर्म कहते हैं। क्रियमान कर्म और कुछ संचित कर्म मिलकर अगले जन्म का प्रारब्ध बन जाते हैं। जब तक सब तरह के कर्मों का नाश नहीं होता, मनुष्य कर्म और फल तथा आवागमन के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता।

पसु पंछी नर सुर असुर, जलचर कीट पतंग।
सबही उतपति कर्म की, सहजो नाना अंग॥[1]

सहजोबाई उपदेश देती हैं कि मृत्युलोक से देवलोक तक कर्म और कर्मफल का नियम कार्य कर रहा है। स्वर्ग और बैकुंठ के देवी-देवता, मनुष्य-जन्म में किये श्रेष्ठ कर्मों का फल भोगते हैं। जब इन कर्मों का फल समाप्त हो जाता है तो उन्हें फिर मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार स्वर्ग और बैकुंठ पुण्य कर्मों के फलस्वरूप मिलते हैं, उसी प्रकार घोर पापों के फलस्वरूप नरकों में निवास मिलता है। कीट-पतंगे, पशु-पक्षी

भोग योनियाँ हैं। मनुष्य-जन्म कर्मयोनि है और भोगयोनि भी। इसमें जीव नये कर्म भी करता है और पूर्व कर्मों का भुगतान भी करता है।

'कर्मन के प्रेरे फिरौ, जन्म जन्म दुख होय।'[2] पुनर्जन्म और ऊँची-नीची योनियों में जन्म होने का कारण मनुष्य-जन्म में किये कर्म हैं। 'उपजि उपजि फिर फिर मरौ, जम दे दारुन दुक्ख।'[3] आवागमन का कारण भी मनुष्य-जन्म में किये कर्म हैं। यमदूतों की मार तथा नरकों की यातनाएँ भी अपने ही किये कर्मों के कारण सहन करनी पड़ती हैं।

चौरासी का भँवर

इक इक बार सबै तुम भये। कहिये कहा बहुत दुख सहे॥
दुख खे खे करि यह तन पायौ। सहजो हरि गुरु बिना गँवायौ॥
चरनदास गुरु पूरे पाये। चौरासी जम दंड छुटाये॥[4]

सहजोबाई समझाती हैं कि जीव को अपने ही किये कर्मों का फल भोगने के लिए अनेक योनियों में भटकना पड़ता है। जीव संसार की अनेक योनियों में जन्म लेता है, कभी वनस्पति तो कभी पशु-पक्षियों के रूप में बार-बार जन्म लेता और मरता है। **'इक इक बार सबै तुम भये। कहिये कहा बहुत दुख सहे॥'** इन निचली योनियों में जीव को जो दु:ख सहने पड़ते हैं, उनके बारे में सोचकर आत्मा काँप उठती है। विचार करें, बच्चे ही नहीं, समझदार लोग भी चलते-चलते वृक्षों के पत्ते तोड़ लेते हैं। उन्हें एहसास तक नहीं है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर से एक भी बाल खींचा जाये तो उसे पीड़ा होती है, उसी प्रकार वृक्षों को भी पीड़ा होती है। पक्षियों को किस प्रकार निर्दयता से मारा जाता है! ऊँट, घोड़े आदि कितना भार ढोते हैं तथा डंडे और चाबुक खाते हैं! बैलों को हल के आगे जोता जाता है और इन मूक पशुओं की हालत कितनी दर्दनाक होती है! भेड़ों, बकरियों और गायों की गर्दनों पर छुरियाँ चलाकर उन्हें किस प्रकार निर्दयता से मार दिया जाता है। फिर मनुष्य को ही देखें, इस योनि में भी सुख नहीं है। जीव भाँति-भाँति के शारीरिक और मानसिक रोगों

से ग्रस्त है। गरमी, सर्दी और बरसात के मौसम में सख़्त मेहनत कर रहे मज़दूरों की हालत देखें तो दिल काँपता है। बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु के संताप का शब्दों में वर्णन कर पाना असंभव है। **'दुख खे खे करि यह तन पायौ। सहजो हरि गुरु बिना गँवायौ॥'** आश्चर्य और दु:ख की बात यह है कि अज्ञानी जीव चौरासी की लंबी दु:खदायी भटकन के बाद मिले इस दुर्लभ मनुष्य-शरीर से लाभ उठाकर आवागमन के चक्कर से मुक्त होने का प्रयत्न तक नहीं करता। यह किसी पूर्ण महात्मा की संगति नहीं करता और न ही प्रभु की भक्ति की ओर ध्यान देता है। परिणाम यह होता है कि यह चौरासी के भँवर में अटका रह जाता है।

जहाँ आसा तहाँ वासा

सहजो रहै मन बासना, तैसी पावै ठौर।
जहाँ आस तहँ बास है, निस्चै करी कड़ोर॥[5]

सहजोबाई कहती हैं कि जीव का अंतिम समय जिस ओर ध्यान होता है, उसी के अनुसार उसे अगला जन्म मिलता है।

इस दोहे में इच्छा, कर्म और उसके फल के बारे में एक अन्य सूक्ष्म रहस्य का संकेत मिलता है। मनुष्य के अंदर जो इच्छा प्रबल होती है, उसी से प्रेरित होकर मनुष्य कर्म करता है और जैसे कर्म करता है, उनका फल भोगने के लिए उन्हीं के अनुसार उसे अगला जन्म मिल जाता है। फल कर्म की संतान है और कर्म की जननी इच्छा है। जीव जो भी कर्म करता है, मन की इच्छाओं की पूर्ति के लिए करता है। इन इच्छाओं को पूरा करने के लिये ही वह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के वशीभूत हो जाता है। इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही जीव इंद्रियों के भोगों में भी प्रवृत्त होता है। इस प्रकार इच्छा कर्म को जन्म देती है। कर्म, फल और आवागमन को जन्म देता है।

देह छूटै मन में रहै, सहजो जैसी आस।
देह जन्म जैसो मिलैं, जैसे ही घर बास॥[6]

इच्छा केवल कर्म और उसके फल का ही कारण नहीं है, यह पुनर्जन्म का कारण भी है। जीवन भर किये गये कर्मों के आधार पर अंत समय जीव के मन में कोई प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है; शास्त्रों में उसे 'संकल्प' कहा गया है। 'संकल्प' जीवन भर किये गये कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं तथा वे अगले जन्म के स्वरूप का आधार बन जाते हैं। मनुष्य को अगला जन्म उसी रूप में दिया जाता है, जिसमें वह अंत समय में उत्पन्न हुए संकल्प या इच्छा को पूरा कर सके। सहजोबाई ने इस तथ्य का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

जा की आस रहै मन्दिर में। होकर घूँस बसै सो घर में।
रहै बासना द्रब्य मँझारा। जन्मै नाग होय पुनि कारा॥[7]

एक व्यक्ति आलीशान महल बनवाता है। महल पूरा होते ही उसका अंत समय आ जाता है। उसके मन में यह लालसा रह जाती है कि इतना पैसा ख़र्च करके इतने परिश्रम से बनवाये महल में रहने का सुख भाग्य में नहीं था। इसके फलस्वरूप अगले जन्म में चूहा बनकर उसी महल में रहने लगता है।

जब किसी व्यक्ति के हृदय में अंत समय में धन-दौलत की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है, तो उसे अगला जन्म काले नाग का मिल जाता है जो किसी बड़े ख़ज़ाने पर जा बैठता है।

जा की रहै पुत्र में आसा। सूवर जन्म नीच घर बासा॥
जा का मन रहै राज दुवारे। हस्ती हो सिर मेलै छारे॥
रहै बासना नीर पियासी। मीन देह धरि जल की बासी॥

रहै बासना बाहन संगा*। होय जन्म ले बाहन अंगा॥
जहाँ बासना जित ही जाई। यह मत बेद पुरानन गाई॥
चरनदास गुरु मोहिं बताई। तजो बासना सहजोबाई॥[8]

सहजोबाई समझाती हैं कि जिसके मन में पुत्र की इच्छा रह जाती है, उसे सूअरी की निकृष्ट योनि में जन्म दे दिया जाता है। जिसके मन में राजपाट की इच्छा होती है, उसे राजद्वार के हाथी का जन्म मिल जाता है जो सदैव अपने सिर पर मिट्टी डालता रहता है। जो पानी की प्यास लेकर शरीर त्याग देता है, उसे मछली का जन्म मिल जाता है जो सदैव पानी में रहती है। इसी प्रकार अंत समय में जिसके हृदय में यह इच्छा रह जाती है कि उसके पास सवारी होनी चाहिये थी; वह माल ढोनेवाली गाड़ी को खींचनेवाले पशु के रूप में जन्म ले लेता है।

'जहाँ बासना जित ही जाई। यह मत बेद पुरानन गाई॥'—वेदों में भी 'जहाँ आसा तहाँ वासा' का सिद्धांत स्वीकार किया गया है। जब तक जीव इच्छाओं का त्याग नहीं करता, वह सदा आवागमन के जाल में फँसा रहता है।

साध संग की बासना, जेहि घट पूरी सोय।
मनुष जन्म सतसंग मिलै, भक्ति परापत होय॥[9]

जिस मनुष्य के हृदय में अंतिम समय साधु की संगति की प्रबल इच्छा रह जाती है, उसे अगले जन्म में मनुष्य-शरीर, सत्संग और प्रभुभक्ति का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

सहजो हरि के नाम की, रहै बासना बीर।
चौरासी संकट कटै, जम की छूटै पीर॥[10]

* माल ढोनेवाला जानवर।

सहजो लोक प्रलोक की, नहीं बासना ताहि।
सो वह ब्रह्म सरूप है, सागर लहर समाय॥[11]

जिसके हृदय में हरि के नाम की चाह बनी रहती है और लोक-परलोक की कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, वह चौरासी के जाल से मुक्त हो जाता है तथा उसे यमदूतों की मार नहीं सहन करनी पड़ती। जैसे समुद्र में से उठी लहर फिर समुद्र में समा जाती है, उसी प्रकार वह भाग्यशाली जीव मृत्यु के बाद सदा के लिए प्रभु में समाकर प्रभु का रूप बन जाता है।

जा की गुरु में बासना, सो पावै भगवान।
सहजो चौथे पद बसै, गावत बेद पुरान॥
परमेसुर की बासना, अन्त समय मन माहिं।
तन छूटे हरि कूँ मिलै, उपजै बिनसै नाहिं॥[12]

सहजोबाई कहती हैं कि वेद-पुराण भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि जिस भाग्यशाली जीव के मन में अंत समय गुरु या प्रभु का संकल्प उत्पन्न होता है, उसका आवागमन के चक्र से छुटकारा हो जाता है और वह चौथे पद अर्थात् अमरपुर धाम में निवास पा लेता है, परमात्मा से मिलाप कर लेता है।

जीव की अवस्था

सहजोबाई ने अपनी बानी के एक प्रसंग में जीव की गर्भ से लेकर मृत्यु तक की दु:खमय अवस्था का वर्णन किया है। मौत के समय यमदूतों द्वारा दी जानेवाली यातनाओं पर भी प्रकाश डाला है। इसका उद्देश्य यह है कि जीव को अपनी अवस्था का ज्ञान हो जाये और वह चौरासी के जाल से छुटकारा पाने का कुछ उपाय करे।

जन्म मरन अब कहत हूँ, कहूँ अवस्था चार।
चौरासी जमदंड कूँ, भिन्न भिन्न बिस्तार॥
चरनदास अज्ञा दई, सहजो परगट गाय।
ता सूँ पढ़ि सुनि जीव की, सकल बन्ध कटि जाय॥[1]

पापी जीव गर्भ जब आवै। भवन अँधेरे बहु दुख पावै॥
तल मूड़ी ऊपर को पाऊँ। मुख लिंगी और बिष्टा ठाऊँ॥
जठर अगिन इक रस जहँ लागी। अधिक तपै जहँ पतित अभागी॥
खट्टा मीठा माता खावै। लागि छुरी सी बहु दुख पावै॥
आप दुखी माता दुख पाया। दसें महीने जग में आया॥
जग जंजाल देखकर रोया। नर नारी मिलि सभी बिगोया॥
माया मोह पवन लगि भूला। सहजो गोद पालने झूला॥
नाते सभी लगे उठि झूठे। पड़ा बन्ध में कैसे छूटे॥[2]

जब जीव को माता के गर्भ के अंधकार में उलटा लटकना पड़ता है, तो गर्भ की अग्नि में वह बुरी तरह तपता है। माता जो खट्टे-मीठे पदार्थ खाती है, वे बच्चे के शरीर को छुरी की तरह काटते हैं। माता और बच्चा दोनों दु:खी होते हैं। दसवें मास में जीव जब गर्भ से बाहर निकलता है, तो वह संसार के जंजाल को देखकर रोता-बिलखता है। माता के गर्भ में इसकी लिव प्रभु के साथ जुड़ी होती है, परंतु बाहर आते ही यह मोह-माया के झूले में झूलने लगता है और अंतर की सब बातें भूलने लगता है। इसे झूठे मायामय रूप और पदार्थ सत्य प्रतीत होने लगते हैं। धीरे-धीरे यह मोह-माया के बंधनों में ऐसा जकड़ा जाता है जिनसे छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जाता है।

सब नाते उठि उठि लगे, रोम रोम लिया बन्ध।
सहजो यह भी रलि मिला, फिर फिर भूला अन्ध॥[3]

सगे-संबंधी जीव को चारों ओर से इस प्रकार घेर लेते हैं कि उसका रोम-रोम उनके मोह में जकड़ जाता है। अज्ञानी जीव संबंधियों के लाड़ और दुलार से उनके साथ इतना घुलमिल जाता है कि उसे अपनी वास्तविकता की कोई सुध नहीं रहती।

कोई कहै मैं इसकी माई। कोई कहै लाला की दाई॥
कोई कहै यह सुन्दर हीरा। गोद खेलाऊँ अपना बीरा॥
कोई कहै मैं या का बापू। बालक पाया पुन्न प्रतापू॥
कोई कहै मैं या की बूवा। चाचा कहै भतीजा हूवा॥
कोई कहै यह मेरा भाई। कोई कहै मैं दादी आई॥
कोई कहै मैं मा की बहिनी। कोई कहै मैं या की नानी॥
कोई कहै मैं इसका मामा। लाया खाँड़ खड्डूले जामा॥
कोई कहै मैं या का नाना। मामी ने भांजा करि जाना॥
कोई कहै यह पोता बाल। कोई कहै यह मेरा लाल॥[4]

जब आत्मा बच्चे के रूप में इस संसार में आती है तो माता-पिता, दादा-दादी, बुआ, मासी, मामा-मामी, नाना-नानी, चाचा-चाची सभी का प्यार और दुलार इसके इर्दगिर्द मोह का मायामय जाल बुन देता है।

सब नाते लिये मान कर, घेरा घेरी घेर।
झूठे साँचे से लगैं, सुपने कंचन मेर॥
पित्र देवता गोतिया, गरह नछत्तर सौन*।
सहजो बंधन बाँधि गए, ताहि छुड़ावै कौन॥[5]

जीव इन संबंधों को सत्य समझ लेता है। वह यह समझने का प्रयास नहीं करता कि स्वप्न में दिखायी देनेवाले सोने के पर्वतों की कोई वास्तविकता नहीं होती। जीव केवल संबंधियों के मोह में ही नहीं फँसता, उसका संबंध गोत्र, पितरों, देवी-देवताओं, ग्रहों-नक्षत्रों, शकुनों आदि से भी जुड़ जाता है। यह धीरे-धीरे इन बंधनों में ऐसा जकड़ा जाता है कि फिर इसे छुटकारे का कोई साधन दिखाई नहीं देता।

बचपन

गूँगा घी कहना जब सीखा। सेढ़ू नाम मदारी भीखा॥
माय बाप ले नाम पुकारैं। जब किलकै तब तन मन वारैं॥
मुख चूमैं और कंठ लगावैं। देवी देवा बहुत मनावैं॥
रोग होय तो बहु दुख पावैं। ले ले जहाँ तहाँ पग धावैं॥
कबहूँ झरि पिंजर ह्वै जावै। कबहूँ खाँसी बहुत सतावै॥
चलै पेट कबहूँ बहु रोवै। खीजै बहुत नेक नहिं सोवै॥
ज्वर कबहूँ दूखैं दोउ नैना। पुनः पुनः दुख लहै न चैना॥
निकसै दाँत दाढ़ दुख भैया। जब सूँ जन्म सदा दुख पैया॥[6]

* सौण (राजस्थानी शब्द), शकुन।

शुरू में बच्चा बोल नहीं पाता। वह केवल संकेत देता है। फिर वह बोलने लगता है। उसका नाम रख दिया जाता है। सभी उसका नाम लेकर उसे प्यार से बुलाते हैं। जब वह तोतली बातें करता है और किलकारियाँ मारता है, तो आसपास सब संबंधी ख़ुशी से फूले नहीं समाते। उसके लिये देवी-देवताओं से मन्नतें माँगते हैं। यदि वह बीमार पड़ जाता है तो उसके इलाज में कोई कमी नहीं छोड़ते। कभी उसको खाँसी सताती है, कभी कमज़ोर हो जाता है, कभी पेट की तकलीफ़ें रुलाती हैं, कभी बुख़ार आ जाता है और कभी आँखें दुखने लगती हैं। जब दाँत निकलते हैं तो भी वह परेशान होता है। अभिप्राय यह है कि उसे जन्म से ही अनेक दु:ख और मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं।

दुक्ख सुक्ख बढ़ने लगा, पाँच बरस भइ देह।
जब पढ़ने बैठाइया, अपनी बिद्या लेह॥[7]

बालक का चित खेल मँझारे। ज्यौं ज्यौं पाधा छड़ियन मारै॥
बैठि रहै तौ पकड़ बुलावै। बाँधि बाँधि दुख देत पढ़ावै॥
मन ही मन सोचै दुख भारी। दुर्जन भये बाप महतारी॥
दुख दे दे कर बहुत पढ़ाया। खोट कपट में घना सँधाया॥
ऐसे भया बरस द्वादस का। रहा नहीं उनहूँ के बस का॥
मन में आवै सो पुनि करई। मात पिता सूँ नेक न डरई॥
खेलै खेल बहुत परकारा। सबही बिधि लड़कापन हारा॥
बालपना हस खेल गँवाया। गुरु की टहल सरन नहिं आया॥
पाप पुन्न कूँ ना पहिचाना। सहजो कर्ता राम न जाना॥[8]

जब वह पाँच वर्ष का हो जाता है तो उसे पढ़ने के लिए भेज दिया जाता है। उसके दु:ख और बढ़ जाते हैं। बालक का मन खेल की तरफ़ होता है और अध्यापक छड़ी के डर से उसे पढ़ाना चाहता है। उसे पढ़ाई के लिए विवश करनेवाले माता-पिता भी अच्छे नहीं लगते। वह सब

सांसारिक चतुराइयाँ उनसे ही सीखता है। बारह साल का हो जाता है तो माता-पिता के नियंत्रण से बाहर हो जाता है। वह मनमानी करता है, माता-पिता की बात को अनसुना करके खेल में मस्त रहता है। वह बचपन को अनेक प्रकार के रंग-तमाशों में गँवा देता है। संत-महात्माओं की शरण में जाकर सेवा से लाभ उठाने का विचार उसके मन में कभी नहीं आता। न वह पाप-पुण्य में अंतर कर सकता है और न ही उसे अपने सिरजनहार प्रभु का ज्ञान होता है।

युवावस्था

तरुनापा फिर आइया, पाँच भूत लै संग।
जोबन मद मातो रहै, पियै बिषय को रंग॥[9]

तरुनापा भया सकल सरीरा। अंधा भया बिसरि हरि हीरा॥
बिषय बासना के मद मातो। अहं आपदा के रंग रातो॥
मूँछ मरोड़ अकड़ता डोलै। काहू तें मुख मीठ न बोलै॥
कहै बराबर मेरे नाहीं। बुद्धिवान कोइ या जग माहीं॥
मैं बलवन्त सबन पर भारी। द्रब्य कमाऊँ नरन अगारी॥
महा दुखी सुख मान लियो है। मोह अमल अज्ञान पियो है॥
भया कुटम्बी जब सुख कैसा। सहजो बन्ध पड़ै कोइ जैसा॥
सुत पुत्री उपजै मरि जावै। सोच सोच तन मन दुख पावै॥[10]

जब वह युवा हो जाता है तो पाँच विकार भूतों की तरह इसे वश में कर लेते हैं। यह यौवन की मस्ती में सांसारिक विषय-भोगों को अमृत समझकर पीता है।

जवानी मस्तानी होती है। जवानी में जीव को अपने शारीरिक बल पर बहुत मान होता है। इसके नशे में यह प्रभुरूपी हीरे की ओर कोई ध्यान नहीं देता। विषय-वासना में डूबा जीव अंहकार के कारण अनेक कठिनाइयों से घिर जाता है। यह अहंकारवश मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता,

किसी से सीधे मुँह बात नहीं करता और अपने आपको सबसे अधिक बुद्धिमान् और चतुर समझता है। इसे अहंकार हो जाता है कि मैं बहुत शक्तिशाली हूँ, कमाऊ हूँ और सबका मुखिया हूँ। जो विषय-भोग वास्तव में इसके दु:खों का कारण हैं, उन्हें सुख का साधन समझकर यह उनमें लिप्त रहता है। मोह-ममता और अज्ञानता के नशे में चूर मनुष्य जब गृहस्थ बन जाता है तो उसमें भी कहाँ सुख चैन से रह पाता है? फिर जब बेटे-बेटियाँ जन्म लेते हैं और उनमें से कोई मर जाता है, तो उस दु:ख का शोक सताता है और यह चिंता की मूरत बनकर रह जाता है।

द्रब्यहीन भटकत फिरै, ज्यों सराय को स्वान।
झिड़कि दियो जेहि घर गया, सहजो रह्यौ न मान॥[11]

जब इसके पास धन-दौलत नहीं रहती, तो यह सराय के कुत्ते की तरह जगह-जगह भटकता फिरता है। जहाँ भी जाता है, अपमानित होता है और इसका सारा अहंकार मिट्टी में मिल जाता है।

द्रब्यहीन सब को मुख जोहै। जाति बरन देखै नहिं को है॥
निहुरि निहुरि ज्यों बन्दर नाचै। राम तजो इन बातन राचै॥
बेटी ब्याह जोग घर माहीं। और भूखे सब कित सूँ खाहीं॥
कहै हवेली एक बनाऊँ। अपने कुल में इज्जत पाऊँ॥
कलपै बहुत सीस धुनि माथा। सहजो दुखी कुटँब के साथा॥
आवै ना सतसंगति माहीं। कुटँब जाल छुटकारा नाहीं॥
हरि की भक्ति नहीं लौ लाई। दारा सुत धन की गुमराई॥
दुख धन्धा करि जन्म गँवाया। सहज सहज बूढ़ापन आया॥[12]

निर्धन व्यक्ति पैसे के लिये हर अच्छे-बुरे व्यक्ति का मुँह ताकता है, तब वह किसी की जाति या वर्ण को नहीं देखता। वह बंदर के समान झुक-झुककर कई प्रकार के नाच नाचता है। दुनिया के काम धंधे उसे

इतना व्यस्त कर देते हैं कि उसका ध्यान कभी प्रभु की ओर नहीं जाता। घर में शादी के योग्य बेटी है, उसकी शादी की बात तो दूर, उसके पास भूखे परिवार को खाना खिलाने के लिए भी पैसा नहीं है। यह मकान बनाना चाहता है ताकि चारों ओर सम्मान हो, परंतु पैसे इसके पास हैं नहीं। यह सिर धुन-धुनकर कलपता है, दु:खी होता है। इस प्रकार यह परिवार सहित दु:खी है और इसके जाल में फँसा हुआ है। इसका ध्यान न सत्संग की ओर जाता है और न ही प्रभु की भक्ति की ओर, बल्कि स्त्री, पुत्र, धन के मोह में वह प्रभुभक्ति के मार्ग से गुमराह हो जाता है। इस प्रकार यह सारा जीवन सांसारिक धंधों में व्यर्थ गँवा देता है। अपना परलोक सँवारने की ओर इसका ध्यान नहीं जाता। अंत में इसे बुढ़ापा आकर घेर लेता है। कितनी दयनीय है जीव की अवस्था!

वृद्ध अवस्था

सहजो धौले आइया, झड़ने लागे दाँत।
तन गुंझल पड़ने लगी, सूखन लागी आँत॥[13]

धीरे-धीरे बुढ़ापे के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। सिर के बाल सफ़ेद होने लगते हैं, दाँत टूटने शुरू हो जाते हैं, शरीर में झुर्रियाँ पड़ने लग जाती हैं और आँतें सिकुड़ने लगती हैं।

डबडबाय आँखन में पानी। बूढ़े तन की यही निसानी॥
नैनन में जल भरि भरि आवै। दाँत हिलैं दारुन दुख पावै॥
गोड़े थके दरद बाई का। कफ खाँसी हिये दुख वाही का॥
खों खों करै नींद नहिं आवै। आप जगै और लोग जगावै॥
बेबस इन्द्री सिथल भई हैं। अब क्या जीतैं सहज गई हैं॥
पूत बहू लख नाक चढ़ावैं। बहुत पुकारै निकट न आवैं॥
निहुरि चलै लकड़ी लै हाथा। स्वजन कुटँब नहिं दुख के साथा॥
असी बरस लग बीते साठी। सहजो कहै बहक बुधि नाठी॥[14]

इस अवस्था में आँखों से पानी बहना शुरू हो जाता है, दाँत हिलने लगते हैं और घुटने दर्द करने लगते हैं। खाँसी का ज़ोर बढ़ जाता है। न ख़ुद सोता है, न दूसरों को सोने देता है। अब जबकि इसकी समस्त इंद्रियाँ धीरे-धीरे शिथिल हो गयी हैं, तो ऐसी दयनीय हालत में यह क्या कर सकता है? यह आवाज़ें लगाता है, परंतु बहू-बेटा पास नहीं फटकते। कूबड़ के कारण हाथ में छड़ी लेकर चलता है। कोई मित्र, संबंधी दु:ख के समय इसका साथ नहीं देता। अस्सी वर्ष का होते-होते मति मारी जाती है और बहकी-बहकी बातें करने लगता है।

असी बरस ऊपर लगी, बिरध अवस्था होय।
आगे की थिरता नहीं, पिछलि गइ सब खोय॥
तीन अवस्था बीत कर, चौथी आई मन्द।
बृद्ध अवस्था सिर चढ़ी, तहू न चेता अन्ध॥[15]

जब आयु अस्सी वर्ष से ऊपर हो जाती है तो वृद्धावस्था आ जाती है। याददाश्त कमज़ोर हो जाती है, आँखों से दिखायी नहीं देता, पाँव लड़खड़ाते हैं और ठीक तरह चला भी नहीं जाता। जीवन की पहली तीन अवस्थाओं को पार कर चौथी में जा पहुँचता है। अक्ल के अंधे को फिर भी होश नहीं आता।

सेत रोम सब हो गये, सूख गई सब देह।
सहजो वह मुख ना रहा, उड़ने लागी खेह॥
सहजो इन्द्री सब थकी, तन पौरुष भये छीन।
आसा तृस्ना ना घटी, सहज बचन भये दीन॥[16]

लागी बिरध अवस्था चौथी। सहजो आगे मौत हि मौती॥
हाथ पैर सिर काँपन लागे। नैन भये बिनु जोति अभागे॥
सर्वन तें कछु सुनियत नाहीं। दाँत डाढ़ नहिं मुख के माहीं॥

कंठ रुके कफ बाई घेरे। हाड़ हाड़ सब दुख में पेरे॥
बात कहै घर बाहर हाँसा। कुटँब दियौ मिल पौरी बासा॥
मन चालै सब रस कूँ तरसै। नर नारी कोइ हितू न दरसै॥
आप आप कूँ इत उत डोलै। बिन पौरुष कोइ मुखहुँ न बोलै॥
जिन कारन पचिया दिन राती। बात करैं नहिं कुटँब सँगाती॥
सुत पोते दुर्गंध घिनावैं। टहल करैं तब नाक चढ़ावैं॥
तिन के मोह तजे जगदीसा। अब मन में कलपै धुनि सीसा॥
चरनदास गुरु कही बिसेषी। हरि बिन यों जग जाता देखी॥[17]

अब वृद्धावस्था ने और ज़ोर पकड़ा। बाल सफ़ेद हो गये हैं। शरीर सूखकर काँटा हो गया है। मुख का रंग फीका पड़ गया है और शरीर निर्बल हो गया है, लेकिन इतनी दयनीय अवस्था हो जाने पर भी आशा-तृष्णा की अग्नि शांत नहीं हुई है।

इस अवस्था में मृत्यु मुँह खोले सामने खड़ी दिखायी देती है। सिर और हाथ-पाँव काँपने लगते हैं। आँखों से दिखायी देना बंद हो जाता है। कानों से सुनायी नहीं देता। मुँह में दाँत न होने की वजह से खाना दूभर हो जाता है। खाँसी और बाई (वायु रोग) के कारण गला रुका रहता है और हड्डियाँ कड़कड़ाती हैं। अपने पराये सभी उसकी बात का मज़ाक उड़ाते हैं और कोई भी इसके प्रति सहानुभूति नहीं दिखाता। उसे घर से बाहर ड्योढ़ी में रहने के लिए कह देते हैं। शरीर की ऐसी अवस्था हो जाने पर भी मन से रसों का मोह नहीं जाता। यह इधर-उधर भटकता फिरता है, बल क्षीण हो जाने के कारण मुँह से बोल ही नहीं पाता। जिन सगे-संबंधियों के लिए संपूर्ण जीवन गँवा दिया, वे सीधे मुँह बात भी नहीं करते। पुत्र-पोते इसकी दुर्गंध से घृणा करते हैं और सेवा करते हुए नाक-भौं सिकोड़ते हैं। जिनके मोह के कारण सारी उम्र प्रभु को भूला रहा, उनका ऐसा व्यवहार देखकर मन ही मन जलता-भुनता है, परंतु इसका कुछ वश नहीं चलता, इसलिए पछतावे में सिर पीटता है। संसार के सब लोग अंत में ऐसी दुर्गति का शिकार होते हैं।

चार अवस्था खो दई, लियो न हरि को नाम।
तन छूटे जम कूटि है, पापी जम के ग्राम॥
आय जगत में क्या किया, तन पाला कै पेट।
सहजो दिन धंधे गया, रैन गई सुख लेट॥[18]

ग़फ़लत में पूरा जीवन बिता रहे जीव को सहजोबाई चेतावनी देती हैं कि हे अज्ञानी! उम्र के हर पड़ाव को तुमने व्यर्थ के कार्यों में गँवा दिया, हरि के नाम का सुमिरन नहीं किया। तन छूट जाने पर जब तुम धर्मराज के दरबार में पहुँचोगे, तो वहाँ तुमसे पूछा जायेगा कि तुम्हें संसार में किस काम के लिये भेजा गया था? तुमने तो संसार में अपना जीवन पेट भरने और तन को सँवारने में गुज़ार दिया। तुमने सारा दिन दुनियावी धंधों में और सारी रात सोने में गुज़ार दी। जो काम करना था वह तो किया ही नहीं। हे जीव! उस समय तू क्या जवाब देगा? फिर यमराज तुम्हारे पापकर्मों की सज़ा देगा।

मृत्यु के समय की अवस्था

बुढ़ापे में जीव की दुर्दशा का चित्रण करके, अब सहजोबाई हर पल मृत्यु की ओर बढ़ते जीव की अवस्था बयान कर रही है।

पित सरका बाई घिर आया। बाय सरक कफ ठौर बसाया॥
कफ सरका गल रोक लिया है। कंठ रुके कोइ नाहिं जिया है॥
घुटर घुटर जब करने लागा। चेतनता सब तन का भागा॥
नाते घिर घिर सब ही आये। थोथे अपने नेह जनाये॥
आँखन सूँ जल भरि भरि लावैं। आपस में सब मोह दिखावैं॥
हाय हाय कर कोई बोलै। कोई ढूँढ़त औषध डोलै॥
कोई कहै कछु द्रब्य बतावो। धरा ढका कछु करज दिखावो॥
वाकूँ सुधि नहिं अपने तन की। जम किंकर मारत हैं घन की॥[19]

जीव बुढ़ापे के कारण कभी एक रोग से पीड़ित हो जाता है तो कभी दूसरे से। पित्त जाता है तो वायु का रोग घेर लेता है। यह रोग जाता है तो कफ़ दबोच लेता है। कफ़ जाता है तो गला रुक जाता है और जीवित रह पाना असंभव हो जाता है। साँस रुक जाती है और शरीर की सुधबुध नहीं रहती। संगी-साथी इकट्ठे हो जाते हैं। वे आँखों में आँसू भरकर प्रेम और सहानुभूति का दिखावा करते हैं। कोई हाय-हाय करता है, कोई दवाइयाँ लेने के लिए भागता है। रिश्तेदार उससे पूछते हैं कि यदि कोई धन कहीं छिपाकर रखा है या किसी को क़र्ज़ पर दिया हुआ धन वापस लेना है तो उसके बारे में बता दो। उस बेचारे को अपनी होश नहीं होती और ऊपर से यमदूत कड़ी यातनाएँ देकर उसकी हालत दयनीय कर देते हैं।

सहजो मृत्यू आइया, लेटा पाँव पसार।
नैन फटे नाड़ी छुटी, सोंही रहा निहार॥[20]

जब मृत्यु का समय आता है तो जीव पाँव पसारकर लेटा रह जाता है। उसकी आँखें खुली रह जाती हैं, नाड़ियाँ साथ छोड़ देती हैं और आँखों की ज्योति बुझ जाती है।

कोई कहै भज रामहि रामा। सहजो कहै कौन अब कामा॥
आगू सूँ हरि सुमरे नाहीं। पचि पचि मुआ कुटँब के माहीं॥
हिरदे रखता राम सँगाती। तौ रच्छा अब सब बनि आती॥
आगू सूँ अभ्यास जो रहता। तौ अब मुख सूँ हरि हरि कहता॥
तन की पीड़ा सब मिटि जाती। जम की तो पै कहा बसाती॥
राम राम मरते तू कहता। जो आगू सूँ कहता रहता॥
तैं मन दिया कुटँब के साथा। हो बैठा घर बाहर नाथा॥
अपना किया भुगत रे जीया। जौ गुरु पूरा ढूँढ़ न कीया॥[21]

यमदूत सिर पर खड़े हैं और लोग राम-राम का जाप करने की नसीहत करते हैं। सारी उम्र तो परिवार के मोह में फँसकर राम-नाम की ओर ध्यान नहीं दिया, अंत समय ध्यान उधर कैसे जाये? यदि सारा जीवन नाम की ओर ध्यान रखता, तो अंत समय इसकी हर तरह से रक्षा और सँभाल होती। नाम का अभ्यास करता रहता तो इस समय अपने आप मुँह से राम-राम निकलता। शरीर को भी दु:ख न सहन करना पड़ता और यमदूत भी न आते। लेकिन इसके विपरीत जीवन भर इसका मन परिवार के मोह में अटका रहा और अंत समय परिवार ने ही घर के स्वामी को घर से बाहर निकाल दिया। सहजोबाई कहती हैं कि हे जीव! जब समय रहते तुम ने गुरु की खोज करने की कोशिश तक नहीं की, तो अब क्या हो सकता है? इसलिये अब अपना किया भुगतने के सिवाय कोई चारा नहीं।

जम की सूरत देख करि, सुधि बुधि गई नसाय।
सहजो जो संकट बन्यो, मुख सूँ कह्यो न जाय॥
सहजो मिरतू के समय, पीड़ा होय अपार।
बीछू एक हजार ज्यों, डंक लगै इकसार॥[22]

मृत्यु के समय जब यमदूत सामने आकर खड़े हो जाते हैं, तो उनकी शक्ल देखकर होश-हवास गुम हो जाते हैं तथा ऐसी-ऐसी यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं जो वर्णन से परे हैं। उस समय बड़ी दर्दनाक पीड़ा होती है, ऐसा लगता है मानों एक हज़ार बिच्छु एक साथ डंक मार रहे हों।

पकरि बाँधि जम लै चले, धर्मराय के पास।
कई बार आगे गये, छप्पन जहाँ तिरास॥
कई भाँति के दंड हैं, सहजो नाना त्रास।
नरक कुण्ड दुख भुगत करि, फिर चौरासी बास॥[23]

यमदूत इसे पकड़कर धर्मराज के सामने पेश करते हैं। पहले भी हर जन्म के अंत में इसके साथ ऐसा ही होता रहा है। वहाँ यह अनेक प्रकार की यातनाएँ सहता है और नरकों के दु:ख भोगता है। उसके बाद फिर उसे चौरासी के चक्कर में डाल दिया जाता है।

रही सो आयुर्दा कटै, मृत्यु लोक के माहिं।
जब ही पूरी हो चुकै, बाँधे नर्कहि जाहिं॥
अति कुचील वह ठौर है, महा घोर भयमान।
त्राहि त्राहि पापी करैं, सुनैं न कानों कान॥[24]

इस मृत्युलोक में आयु पूर्ण हो जाने पर जीव के पाप कर्मों के कारण, उसे बाँधकर फिर से नरक में फेंक दिया जाता है। नरक अति गंदे और भयभीत कर देनेवाले हैं। वहाँ पापी करुणा भरी पुकार करते हैं, परंतु उनका दु:ख सुननेवाला कोई नहीं होता।

बहुतक घोर नरक में पड़े। बहुतक थंभन बाँधे खड़े॥
बहुतन के सिर आरे धरिये। बहुतक पापी गुरजों गढ़िये॥
बहुतों का सिर नीचे किया। ऊपर बाँधि पाँव जो दिया॥
तले कड़ाहे तेल जलाया। भर भर करछे छौंक लगाया॥
बहुतन पकरि कुण्ड में डारे। जिन सिर कागा चोंचन मारे॥
कहँ लग कहूँ त्रास बहुतेरे। छप्पन त्रास कहे गुरु मेरे॥
जम पेरत हैं सकल मँझारी। सबही भुगतैं नर कहा नारी॥
फिरि फिरि मूँड़ी जाय कुटावैं। सहजो कहै नहीं सकुचावैं॥[25]

नरक का भयानक दृश्य चित्रित करते हुए सहजोबाई कहती हैं कि अनेक जीव घोर नरकों में दु:ख भोगते हैं। अनेक स्तंभों से बँधे खड़े रहते हैं। अनेक जीवों के सिरों पर आरे चलाये जाते हैं तथा पापियों की मूसलों

से पिटाई की जाती है। अनेक जीवों को उलटे लटकाया जाता है। अनेक जीवों के पाँव बाँधकर तेल से भरे कड़ाहों में तला जाता है। कुछ जीवों को गंदगी से भरे गड्ढों में फेंक दिया जाता है, जहाँ कौए उनके सिरों पर चोंच मारते हैं। क्या पुरुष और क्या स्त्रियाँ, सभी अपने-अपने कर्मों के अनुसार नरकों में अनेक दु:ख भोगते हैं। नरकों की छप्पन क़िस्म की यातनाएँ मानी गयी हैं, जिनका वर्णन सुनकर आत्मा काँपती है।

जम का लिंग सरीर है, पापी लिंग सरीर।
जैसे कूँ तैसे गहै, वैसी वा कूँ पीर॥[26]

धर्मग्रंथों के अनुसार मृत्यु के उपरांत सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ रहता है। इसमें पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच तत्त्वों के सूक्ष्म विभाव, मन, बुद्धि और अहंकार क़ायम रहते हैं, परंतु स्थूल शरीर नहीं होता। जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, यह शरीर बना रहता है।

यमदूत अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा यातनाएँ देते हैं और जीव अपने सूक्ष्म शरीर पर ही यातनाएँ सहता है। जो जैसा बीज बोता है, वैसी फसल काटता है; जैसे कर्म करता है, वैसे ही दु:ख-सुख भोगता है।

लख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतन्त।
जन्म मरन छूटै नहीं, बिना सरन भगवन्त॥[27]

अनंत काल से चौरासी के चक्कर में पड़ा जीव बार-बार जन्म लेता और मरता है। जब तक वह प्रभु की शरण नहीं लेता और उसकी भक्ति नहीं करता, तब तक उसका चौरासी से छुटकारा नहीं हो सकता।

जीव अज्ञानतावश धन-दौलत, हाट-हवेली, ज़मीन-जायदाद, राजपाट, मान-सम्मान, मित्र-संबंधी, राग-रंग की महफ़िलें आदि को सुख का साधन समझकर इनकी ओर दौड़ता रहता है। वृद्धावस्था में भी ये

आकर्षण उसका पीछा नहीं छोड़ते। मृत्यु के बाद फिर वही नरकों की यातनाएँ भोगने और जन्म-मरण के दु:ख सहने का सिलसिला चलता रहता है।

विचार करें! क्या ये वस्तुएँ जीव को बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु के दु:ख से छुड़ा सकती हैं? क्या ये मन की वास्तविक शांति का साधन बन सकती हैं? क्या तीनों लोकों की संपदा के बदले एक भी साँस ख़रीदा जा सकता है? अथवा क्या ये संपदा आत्मिक शांति और आवागमन से छुटकारे का साधन हो सकती है? विवेकपूर्ण विचार के उपरांत हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज तक कोई भी व्यक्ति इन वस्तुओं द्वारा आत्मिक शांति प्राप्त नहीं कर सका है। इन वस्तुओं में लिप्त होकर मनुष्य नरक की यातनाओं का अधिकारी अवश्य बन जाता है। इन सब दु:खों से छुटकारे का एकमात्र उपाय प्रभुभक्ति ही है। प्रभुभक्ति में लीन होकर जीव की दु:ख-सुख को सहने की शक्ति बढ़ जाती है। वह धीरे-धीरे इन सीमाओं से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसे ऊँची और निर्मल अवस्था प्राप्त हो जाती है।

सतगुरु

सहजोबाई ने अपनी बानी में गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए उसे अपरंपार बताया है। उनके अनुसार मनुष्य जीवन का उद्देश्य प्रभु के साथ मिलाप करना है। यह कार्य केवल सतगुरु की दया से उनके मार्गदर्शन में ही पूर्ण हो सकता है। इसी लिए वे बार-बार सतगुरु को नमन करती हैं।

नमो नमो गुरु देवन देवा। नमो नमो गुरु अगम अभेवा॥
नमो नमो निरलम्ब निरासा। नमो नमो परमातम बासा॥
नमो नमो त्रिभुवन के स्वामी। नमो नमो गुरु अंतरजामी॥
नमो नमो गुरु पातक हरता। नमो नमो पारायन करता॥
गति मति छाके आनँद रूपा। नमो नमो गुरु ब्रह्म सरूपा॥
नमो नमो मम प्रान पियारे। नमो नमो तिर्गुन तें न्यारे॥
भक्ती ज्ञान जोग के राजा। सहजो के पुरवो सब काजा॥
जो कोइ सरन तुम्हारी आयौ। तुरियातीत* बिज्ञान बसायौ॥[1]

सतगुरु को बार-बार प्रणाम है। सतगुरु सब देवों में श्रेष्ठ हैं। सतगुरु अगम्य हैं, उनका भेद पा सकना असंभव है। सतगुरु अपना आधार आप हैं। उन्हें किसी दूसरे के आधार की आवश्यकता नहीं। वे हर प्रकार की

* ब्रह्म से परे।

मायामय आशा-तृष्णा से मुक्त हैं। उनके अंतर में प्रभु समाया हुआ है। सतगुरु त्रिलोकी के स्वामी हैं। ऐसे अंतर्यामी सतगुरु को बार-बार नमन है। पापों का नाश करनेवाले तथा भवसागर से पार ले जानेवाले सतगुरु का अभिनंदन है। सतगुरु अगम्य गति तथा अगाध विवेक के स्वामी हैं। वे प्रभु की भाँति आनंदरूप हैं। सतगुरु निराकार प्रभु का ही साकार रूप हैं।

मेरे प्राणों से प्यारे सतगुरु! आप तीनों गुणों से परे हैं। आप भक्ति, योग तथा ज्ञान के दाता हैं। आप ने सहजो के सब कार्य पूर्ण कर दिये हैं—आपकी शरण पाकर सहजो का मानव-जन्म सफल हो गया है। हे सतगुरु! जिसे आपकी शरण प्राप्त हो जाती है, वह तीनों गुणों को पार करके प्रभु में समा जाता है और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

आनँद रूप सरूप मई है, लिप्त नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो के रे, नमो नमो बारम्बार॥[2]

वह आनंदरूप प्रभु स्वयं सतगुरु का साकार रूप धारण कर लेता है। इसलिए सतगुरु भी प्रभु की तरह ही आनंदरूप हैं और मायामय संसार से पूर्णतया निर्लिप्त हैं। हे मेरे सतगुरु! आपको बार-बार प्रणाम है।

परमहंस तारन तरन, गुरु देवन गुरु देव।
अनुभै बानी दीजिये, सहजो पावै भेव॥[3]

सहजोबाई अपने सतगुरु की महिमा उन्हें मुक्तिदाता, परमहंस और परमसंत कहकर करती हैं। वे सतगुरु को सर्वश्रेष्ठ और पूजनीय मानती हैं। वे सतगुरु के आगे प्रार्थना करती हैं कि मुझे नामरूपी बानी यानी शब्द का अनुभव दीजिये ताकि मैं भी उस परमात्मा का भेद पा सकूँ।

नमो नमो गुरु तुम सरना।
तुम्हरे ध्यान भरम भय भागैं, जीते पाँचौ मरना॥

दुख दारिद्र मिटैं तुम नाऊँ, कर्म कटैं जो होहिं घना।
लोक परलोक सकल बिधि सुधरैं, पग लागैं आय ज्ञान गुना॥
चरन छुए सब गति मति पलटैं, पारस जैसे लोह सुना।
सीप परसि स्वाँती भयो मोती, सोहत है सिर राज रना॥
ब्रह्म होय जीव बुधि नासै, जब कैसो होना मरना।
अमर होय अमरापद पावै, यह गुर कहियै गुरु बचना॥
चरनदास गुरु पूरे पाये, जग का दुख सुख क्यों सहना।
सहजो बाई ब्याध छुटा कर, आनँद मंगल में रहना॥[4]

ऐसे सतगुरु के चरणों पर बार-बार प्रणाम है, जिनकी शरण पाकर पाँचों विकारों पर विजय प्राप्त हो जाती है। सतगुरु द्वारा बख़्शे नाम की कमाई से अनगिनत कर्मों और उनसे उत्पन्न होनेवाले दु:खों और क्लेशों का अंत हो जाता है। लोक-परलोक सुधर जाते हैं और पारमार्थिक गुण प्राप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार पारस को छूने से लोहा सोना बन जाता है, उसी तरह सतगुरु के चरणों की शरण द्वारा शिष्य की अवस्था पूर्णतया बदल जाती है। जैसे सीप के मुख में पड़ी स्वाति बूँद मोती बनकर राजा-महाराजाओं के मुकुट में सुशोभित होती है, उसी प्रकार सतगुरु की शरण में आया शिष्य अमरपद प्राप्त करके शोभा पाता है। सतगुरु की संगति द्वारा जीवात्मा का दुर्मति से छुटकारा हो जाता है और वह हरि के साथ मिलाप करके हरि का रूप हो जाती है।

ऐसा जीव दु:ख-सुख के भाव से ऊपर उठकर सहज अवस्था प्राप्त कर लेता है और परमात्मा में समाकर आनंदरूप हो जाता है।

सतगुरु महिमा

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटँब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी॥

हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायौ॥
हरि ने मो सूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥
फिर हरि बंधमुक्ति गति लाये। गुरु ने सबही भर्म मिटाये॥
चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ॥[5]

सहजोबाई सतगुरु की महिमा करते हुए कहती हैं कि संसार में आवागमन के बंधनों में घिरा हुआ जीव गुरु की कृपा से ही बंधन मुक्त होता है। काम, क्रोध आदि पाँच डाकुओं से छुड़ानेवाला भी गुरु ही है। घर-परिवार और सगे संबंधियों का मोह जाल भी गुरु के मार्गदर्शन से ही कटता है। जीव गुरु की शरण पाकर ही सांसारिक दु:खों, विषय-विकारों और ऐंद्रिय-भोगों से ऊपर उठ पाता है। गुरु द्वारा बतायी युक्ति के अनुसार जब जीव को अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप की पहचान हो जाती है, तभी वह कर्मों और सांसारिक भ्रमों से मुक्त होता है। गुरु शिष्य को वह ज्ञान देता है, जिसके प्रकाश में शरीर में गुप्त रूप से विद्यमान हरि के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं। गुरु की दया-मेहर से परमपद की प्राप्ति के मार्ग की अनेक बाधाएँ और भ्रम दूर हो जाते हैं। इसलिए गुरु का स्थान सबसे ऊँचा है।

उक्त वर्णन पढ़कर मन में प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि प्रभु से बड़ा कोई कैसे हो सकता है? सहजोबाई के इस वर्णन को उनकी बानी के उन प्रसंगों के साथ पढ़ना चाहिये, जिनमें उन्होंने परमात्मा के बारे में कहा है कि निर्गुण भी वही है और सगुण भी वही है। निराकार और साकार दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं। साकार की महिमा और स्तुति, वास्तव में निराकार हरि की स्तुति और महिमा है। सहजोबाई परमार्थ के इस गूढ़ रहस्य पर बल देना चाहती हैं कि जब तक हरि स्वयं गुरु के साकार रूप में प्रकट होकर जीव की सहायता नहीं करता, तब तक जीव का जगत्-जाल से मुक्त होकर प्रभु के साथ मिलाप कर पाना असंभव है।

हरि किरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहिं॥[6]

सहजोबाई द्वारा की गयी गुरु महिमा का ढंग कुछ अलग-सा है। वे कहती हैं कि हरि की कृपा हो या न हो, परंतु गुरु की कृपा के बिना जीव की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

संत चरनदास जी की बानी में भी यही संकेत है:

हरि रूठैं कुछ डर नहीं, तो भी दे छुटकाय।
गुरु को राखौ सीस पर, सब बिधि करैं सहाय॥[7]

प्रभु अपनी रचना को अपने बनाये नियमों के अनुसार चलता देखकर प्रसन्न होता है। वह स्वयं रचना से निर्लेप रहता है। जब वह गुरु का रूप धारण करके रचना के जेलख़ाने में आता है तो वह न्यायकर्ता के रूप में नहीं, बल्कि दयालु के रूप में विचरण करता है। सगुण रूप धारण करके संसार में आने का उसका एकमात्र उद्देश्य पापों, विषय-विकारों, माया-मोह के जाल में फँसे निर्बल अज्ञानी जीवों पर दया करना होता है। उस रूप में वह जीवों के गुण-अवगुण देखे बिना उन पर अपनी कृपा और दया की वर्षा करता है। गुरु की प्रशंसा हरि के साकार रूप की प्रशंसा है। दोनों में से किसी के बड़ा या छोटा होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। वास्तविक उद्देश्य हरि के सगुण स्वरूप की दया का वर्णन करना है।

गुरु की अस्तुति कहँ लौं कीजै। बदला कहा गुरू कूँ दीजै॥
गुरु का बदला दिया न जाई। मन में उपजत है सकुचाई॥
इन नैनन जिन राम दिखाये। बंधन कोटि काटि मुक्ताये॥
अभय दान दीनन कूँ दीन्हे। देखत आप सरीखे कीन्हे॥[8]

सहजोबाई कहती हैं: सतगुरु की महिमा का गुणगान कर पाना तथा सतगुरु के उपकार का मूल्य चुका पाना असंभव है। वह निर्बल अज्ञानी जीव को अनेक बंधनों से मुक्त करके, हरि के दर्शन करवा देता है। अपनी शरण में आये जीव को अपना ही रूप बनाकर उसे निर्भयपद यानी सहज अवस्था प्राप्त करने के योग्य बना देता है।

हमारे गुरु पूरन दातार।
अभय दान दीनन को दीन्हे, कीन्हें भवजल पार॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जम की बंध निवार।
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावनहार।
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उँजियार॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजन ध्यान बिचार।
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार॥
आनँद रूप सरूप मई है, लिप्त नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो के रे, नमो नमो बारम्बार॥[9]

सतगुरु पूर्ण दाता हैं। वे निर्बल और दीनहीन जीवों को अभयदान बख़्शकर भवसागर से पार कर देते हैं। उन्हें जन्म-मरण और यम के बंधन से मुक्त कर देते हैं। भक्तिरूपी धन से हीन लोगों को भक्तिरूपी धन से संपन्न बना देते हैं। उन्हें ज्ञान और भक्ति की दात बख़्शकर उनका परमात्मा के साथ मिलाप करा देते हैं। वे अपने उपदेश से जीव के तन-मन को शांत कर हृदय में ज्ञान का प्रकाश भर देते हैं। सतगुरु की बतायी ध्यान विधि द्वारा घोर पापों और दु:खों का नाश हो जाता है और मन आनंदित हो जाता है। वे सज्जन और दुर्जन को समान दृष्टि से देखते हैं तथा बिना किसी भेदभाव के उन्हें प्रभुभक्ति की दात बख़्श देते हैं। वे प्रभु की तरह आनंदरूप होते हैं। वे माया से पूरी तरह निर्लेप रहते हैं। ऐसे गौरवशाली सतगुरु को बारंबार प्रणाम है।

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुँदर जाय।
धरती का कागद करूँ, गुरु अस्तुति न समाय॥[10]

सहजोबाई कहती हैं: यदि सभी पर्वतों की स्याही बनाकर, उसे सात समुद्रों में घोल दिया जाये और संपूर्ण पृथ्वी कागज़ बन जाये, तो भी गुरु की अपार महिमा लिखी नहीं जा सकती।

पूर्ण गुरु की आवश्यकता

सहजोबाई परमार्थ के इस गूढ़ रहस्य पर प्रकाश डाल रही हैं कि गुरु का होना ही सबकुछ नहीं है। गुरु ऐसा होना चाहिये जो प्रभु में अभेद हो। केवल ऐसा पूर्ण गुरु ही अपनी शरण में आये जीव का प्रभु के साथ मिलाप कराने में समर्थ होता है।

अष्टादस और चार षट, पढ़ि पढ़ि अर्थ कराहिं।
भेद न पावैं गुरु बिना, सहजो सब भर्माहिं॥[11]

ग्रंथ-शास्त्रों में वर्णित सत्य को संत-महात्माओं के व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव का आधार प्राप्त होता है। लेकिन वाचक ज्ञानी आंतरिक अनुभव के बिना ही अठारह पुराणों, चार वेदों और छ: दर्शनों की मनचाही व्याख्या करते हैं। एक व्याख्याकार एक अर्थ करता है तो दूसरा कुछ और। यदि व्यक्तिगत अनुभव न हो, तो कल्पना, विचार या बुद्धि के बल पर किये अर्थों में विभिन्नता का होना स्वाभाविक है। धर्मग्रंथों के सही अर्थ वही महात्मा कर सकते हैं, जिन्हें उन ग्रंथों की रचना करनेवालों जैसी उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त हो। गुरु परमात्मा के साथ अभेद होता है, इसलिए वह धर्मग्रंथों में वर्णित सत्य के वास्तविक अर्थों का ज्ञाता होता है। पूर्ण गुरु के बिना धर्मग्रंथों के सही अर्थ समझ पाना तथा उस सत्य का अनुभव कर पाना असंभव है।

सहजो गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार।
तीन लोक दृष्टा भये, मिटयौ भरम अँधियार॥[12]

सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही, सूझि पड़ै भगवन्त॥[13]

सहजो गुरु परताप सूँ, होय समुन्दर पार।
बेद अर्थ गूँगा कहै, बानी कितइक बार॥[14]

सतगुरु से ज्ञान का दीपक प्राप्त हो जाने पर दिव्यदृष्टि खुल जाती है। अंतर में ज्ञान का प्रकाश होने से भ्रम का अँधेरा मिट जाता है। शिष्य को तीनों लोकों का ज्ञान हो जाता है। फिर उसे वर्तमान ही नहीं, भूत और भविष्य के बारे में भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसको संपूर्ण रचना में प्रभु विद्यमान दिखायी देने लगता है। सतगुरु की कृपा से वह भवसागर से पार हो जाता है। वह न केवल धर्मग्रंथों के वास्तविक मर्म को समझ जाता है, बल्कि उनकी सही व्याख्या भी करने लगता है और स्वयं धर्मग्रंथों की रचना करने में भी समर्थ हो जाता है।

आपन कूँ देही नहिं जानै जानत आतम साँच।
चरनदास कह सहजो बाई ताहि न आवै आँच॥[15]

सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतम रूप।
तिमिर गयौ चाँदन भयौ, पायौ परघट गूप॥[16]

सांसारिक विषय-वासनाओं में सुख ढूँढ़ने में व्यस्त जीव शरीर को ही अपनी वास्तविकता समझ लेने के भ्रम का शिकार है। सतगुरु की कृपा से शिष्य को ऐसा ज्ञानरूपी दीपक प्राप्त हो जाता है, जिसके प्रकाश में उसे अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उनकी दया से अंतर

में ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का अंधकार दूर हो जाता है तथा अदृश्य प्रभु के साक्षात् दर्शन हो जाते हैं। इस अवस्था में सांसारिक विकारों की आग उसे प्रभावित नहीं कर सकती।

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलैं, समझ देख मन माहिं॥
परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत बेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान॥[17]

सहजोबाई तर्कपूर्वक कहती हैं कि जब हर प्रकार की सांसारिक विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती है, तो पारमार्थिक ज्ञान और प्रभु के साथ मिलाप गुरु की सहायता के बिना कैसे हो सकता है? इसी लिए वेदों और पुराणों में भी हरि के साथ मिलानेवाले गुरु को हरि से बड़ा माना गया है। गुरु द्वारा बतायी हुई भक्ति के द्वारा शास्त्रों में कहा गया केवल मुक्ति पद ही प्राप्त नहीं हो जाता, बल्कि स्वयं प्रभु से मिलाप हो जाता है। सहजोबाई कहती हैं कि मैं वही सब कह रही हूँ जिसकी वेदों और पुराणों ने भी साक्षी दी है। अन्य बहुत-से संत-महात्माओं ने भी इसी भाव को अपने-अपने ढंग से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

गुरु बिना नहिं ज्ञान दीपक, जाय ना अँधियार।
काम क्रोध मद लोभ माहीं, उरझिया संसार॥
चरनदास गुरु दया करि कै, दिये मन्तर कान।
सहजो घट परगास हूवा, गयौ सब अज्ञान॥[18]

गुरु के ज्ञानरूपी दीपक के बिना सारा संसार विषय-विकारों, इंद्रियों के भोगों और मोह-ममता के अंधकार में उलझा हुआ है। जब सतगुरु

गुरुमंत्र की दात बख़्श देते हैं, तो जीव के अंतर में ज्ञान का प्रकाश भर जाता है और अज्ञानता का अँधेरा दूर हो जाता है।

वक़्त का सतगुरु

नमो नमो सुकदेव गुसाईं। प्रकट करी भक्ती जग माहीं॥[19]

सहजोबाई बानी के आरंभ में अपने सतगुरु के गुरु श्री सुखदेव की महिमा करते हुए उन्हें प्रणाम करती हैं। संपूर्ण बानी में भी बार-बार अपने गुरुदेव श्री चरनदास का यश गाती हैं। सहजोबाई के विचार में पूर्वकाल में हुए संत-महात्मा धन्य हैं, परंतु साधक को जो भी पारमार्थिक लाभ प्राप्त होता है, वह अपने समय के सतगुरु से होता है।

ज्ञान जोग की नौका कीन्ही। चरनदास केवट को दीन्ही॥
बहुतक पापी जीव चढ़ाये। भवसागर सूँ पार लँघाये॥[20]

सिष समान कीट के आवैं। भृंगी ह्वैकर ताहि बनावैं॥...
बिना लोय दीपक सिष परसैं। ह्वै दीपक तिन्हूँ कूँ दरसैं॥[21]

सतगुरु श्री सुखदेव जी ने संत चरनदास को सतगुरु के रूप में स्थापित किया और अपने जीते-जी कई अन्य शिष्यों को भी दूसरे जीवों को चेताने की आज्ञा दे दी। इसी प्रकार संत चरनदास जी ने भी सहजोबाई को गुरु पद सौंप दिया और अपने जीते-जी कई स्थानों पर संतमत के प्रचार के लिए भेजा। संत-महात्मा चोला छोड़ने से पहले किसी महात्मा को अपनी जगह पर सतगुरु स्थापित करके जाते हैं, क्योंकि जीव केवल अपने समय के प्रत्यक्ष सतगुरु से ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

आज की किश्ती को आज का मल्लाह ही चला सकता है। आज के मरीज़ को आज के हकीम या डॉक्टर की आवश्यकता है। संसार की प्रत्येक विद्या के लिए भी अपने समय के अध्यापक की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान के लिए भी अपने समय के सतगुरु का होना आवश्यक है, क्योंकि इस संसार में प्रत्यक्ष रूप में मौजूद सतगुरु ही शिष्य को गुरुमंत्र के रूप में ऐसी युक्ति प्रदान कर सकता है, जिससे प्रभु से मिलाप हो जाता है। सहजोबाई ने भी सतगुरु से गुरुमंत्र प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया है। उन्होंने सतगुरु के लिए मल्लाह, वैद्य, भृंगी, दीपक आदि का दृष्टांत देकर वक़्त के सतगुरु का महत्त्व समझाया है।

चरनदास गुरु किरपा सेती, सहजो पाई सरन तिहारी।[22]

जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेव। गुरु ह्वै ध्यान खेलौना दीन्हेव॥[23]

सहजोबाई कहीं भी यह नहीं कहतीं कि मैंने सतगुरु की शरण ली। वे बार-बार इस बात पर बल देती हैं कि सतगुरु ने दया करके मुझे अपनी शरण बख़्श दी। किसी महात्मा को अपना गुरु धारण करना शिष्य के वश में नहीं होता। जिसको महात्मा अपनी शरण में लेना स्वीकार करते हैं, वही उस महात्मा का शिष्य कहला सकता है।

सतगुरु की चरण-शरण

अठसठ तीरथ गुरु चरन, परबी होत अखंड।
सहजो ऐसा धाम नहिं, सकल अंड ब्रह्मंड॥
सब तीरथ गुरु के चरन, नित ही परबी होय।
सहजो चरनोदक लिये, पाप रहत नहिं कोय॥[24]

सहजोबाई प्रेमपूर्वक इस वास्तविकता को समझाती हैं कि सतगुरु के चरणों में ही अड़सठ तीर्थों का पुण्यफल प्राप्त हो जाता है। इन चरणकमलों का सुखदायक आश्रय कभी न समाप्त होनेवाले पर्व के समान है। समस्त खंडों-ब्रह्मांडों में सतगुरु के चरणों से अधिक निर्मल और श्रेष्ठ स्थान कहीं नहीं है। गुरु के चरणों में ही समस्त तीर्थ समाये हुए हैं। इसलिये गुरु

के चरणों की शरण लेनेवाले तो नित्य ही पर्व मनाते हैं। जिसे सतगुरु के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो जाती है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

सब तीरथ गुरु चरनन लारे। चरन बर्त दृढ़ सदा हमारे॥
चरन कँवल की निसदिन पूजा। परसूँ और देव नहिं दूजा॥
इष्ट हमारे गुरु के चरना। गुरु के चरन ध्यान हूँ करना॥
गुरु के चरन लगे सो तारे। गुरु के चरन प्रान सूँ प्यारे॥
आसा मनसा और करमना। गुरु के चरन प्रेम चित धरना॥[25]

सहजोबाई कहती हैं: सब तीर्थों का पुण्यफल गुरु के चरणकमलों की शरण में समाया होता है। मैंने गुरु के चरणों को प्रेमपूर्वक हृदय में बसा लिया है। मैं गुरु के चरणों के अलावा अन्य किसी भी देव का ध्यान नहीं करती। मुझे गुरु के चरणकमल प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। मुझे आशा है तो गुरु के चरणों से, मुझे इच्छा है तो गुरु के चरणों की। मेरे प्रत्येक कर्म का आधार गुरु के चरणकमलों का प्रेम है। गुरु के चरणकमल भवसागर से पार उतरने का एकमात्र जहाज़ हैं। इसलिए उनके चरणों को प्रेमपूर्वक अपने हृदय में बसा लेना चाहिये।

गुरु पग निस्चै परसिये, गुरू पग हिरदे राख।
सहजो गुरु पग ध्यान करि, गुरु बिन और न भाख॥[26]

सहजोबाई उपदेश देती हैं कि मन में सतगुरु के चरणकमलों की गहरी प्रीति धारण करके अपने ध्यान को दृढ़ता से उनके चरणों में लगाये रखना चाहिये। सतगुरु की महिमा के सिवाय किसी दूसरे की चर्चा नहीं करनी चाहिये।

गुरु के चरन कँवल चित राखूँ। आठ सिद्धि नौ निधि सब नाखूँ॥
सकल पदारथ गुरु पग माहीं। गुरु पग परसे सब दुख जाहीं॥

गति मति पलटे गुरु पग परसे। गुरु पग परसे त्रिभुवन दरसै॥
गुरु पग परसे ब्रह्म बिचारै। गुरु पग परसे माया छाँड़ै॥
गुरु पग परसे जोग जुगन्ता। गुरु पग परसे जीवन मुक्ता॥
गुरु पग परसे बन्धन छूटै। मोह ममत की फाँसी टूटै॥
गुरु पग परसे हरि पद पावै। रहै अमर ह्वै गर्भ न आवै॥
चरनदास पग महिमा भारी। बार बार सहजो बलिहारी॥[27]

सहजोबाई कहती हैं: जिस शिष्य के हृदय में सतगुरु के चरणकमलों का वास हो जाता है, उसकी आँखों से अज्ञानता का परदा उठ जाता है। वह आठ सिद्धियों और नौ निधियों को भी तुच्छ समझकर ठोकर मार देता है। इन चरणकमलों से जुड़ जाने से सभी दु:ख दूर हो जाते हैं और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। सतगुरु के चरणकमलों के प्रताप से ध्यान बाहर से पलटकर अंदर स्थिर हो जाता है और तीनों लोकों की सूझ हो जाती है। सतगुरु के चरणकमलों की प्रीति से साधक को पूर्ण योगी की अवस्था और जीते-जी मुक्ति प्राप्त हो जाती है। गुरु के चरणकमलों में लिव लगाने से मोह-ममता के बंधन टूट जाते हैं, जीव आवागमन से मुक्त हो जाता है और उसे अमरपद प्राप्त हो जाता है। सतगुरु के चरणकमलों की महिमा बखान कर पाना असंभव है।

सतगुरु के बाहरी चरण भी धन्य हैं। इन चरणों की शरण से अभिप्राय सतगुरु की शरण, सतगुरु की संगति और सतगुरु के उपदेश का पालन करने से है। परंतु उपर्युक्त वर्णन में सतगुरु के चरणकमल उस अद्भुत आध्यात्मिक अवस्था की ओर संकेत करते हैं, जिसमें ध्यान अंदर स्थिर होने पर शब्द का अलौकिक प्रकाश दिखायी देता है। संत-महात्माओं ने उस अद्भुत प्रकाश को ही सतगुरु के चरणकमल की धूलि कहा है।

सहजो सतगुरु जो मिलैं, मुक्ति धाम फल देहिं॥
कुटंब जाल जित तित रुप्यो, पसु पंछी नर माहिं।
सहजो गुरुबर्ती बचै, निगुरे अरुझत जाहिं॥

बार बार नाते मिलैं, लख चौरासी माहिं।
सहजो सतगुरु ना मिलैं, पकड़ निकासैं बाहिं॥
जन्म जन्म हरि संग ही, मिलि रह्यौ आठो जाम।
सहजो गुरु के बिन मिले, पायौ ना बिसराम॥[28]

पशु-पक्षियों के समान मनुष्य भी परिवार के मोहजाल में फँसे हुए हैं। इसलिये जीव चौरासी के चक्र में भटकता रहता है। सतगुरु के उपदेश पर चलनेवाला ही इस चक्र से बाहर निकल सकता है, जबकि निगुरे सदा इस जाल में फँसे रहते हैं। प्रभु प्रत्येक योनि के प्रत्येक जीव के अंदर विराजमान है, परंतु गुरु के बिना हरि के साथ मिलाप कर पाना असंभव है। सतगुरु की शरण के बिना आवागमन का चक्र कभी समाप्त नहीं हो सकता।

गुरु की आज्ञा

गुरु अज्ञा दृढ़ करि गहै, गुरु मत सहजो चाल।
रोम रोम गुरु को रटै, सो सिष होय निहाल॥[29]

गुरु की शरण का वास्तविक अर्थ मन की इच्छा त्यागकर गुरु की आज्ञा को सबसे बड़ा मानना है। गुरु की आज्ञा का पालन ही गुरु के प्रति प्रेम और उस पर विश्वास का वास्तविक प्रमाण है। शिष्य को रूहानियत में जो कुछ भी प्राप्त होता है, तन-मन से गुरु की आज्ञा का पालन करने से होता है।

सार रूप में हम कह सकते हैं कि गुरु अपने शिष्य को दो प्रकार की नसीहत देता है। पहली यह कि वह अपनी वृत्ति सांसारिक के बजाय पारमार्थिक बनाये अर्थात् संसार का मोह त्यागकर हृदय में प्रभु का प्रेम बसाये। सतगुरु शिष्य को विषय-विकारों, इंद्रियों के भोगों, संसार के झूठे मान-सम्मान, ईर्ष्या, घृणा, निंदा-चुगली का त्याग करके अपने अंदर शील, क्षमा, संतोष, विवेक, नम्रता, प्रेम, सेवा आदि गुण धारण करने का

उपदेश देता है। इसके साथ वह शिष्य को तन-मन से नाम के अभ्यास की प्रेरणा देता है, ताकि शिष्य अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर ले।

गुरु की अज्ञा दृढ़ करि गहिये। गुरु की अज्ञा ही में रहिये॥
गुरु अज्ञा बिन काज न कीजै। हानि होय तो होने दीजै॥
गुरु की अज्ञा बिघ्न न कोई। गुरु की अज्ञा गुरुमुख होई॥
गुरु की अज्ञा भक्ति बढ़ावै। गुरु की अज्ञा पार लँघावै॥
गुरु की अज्ञा सकल सिरोमन। गुरु की अज्ञा चलै सो हरिजन॥
गुरु अज्ञा मानै सोइ साधू। गुरु अज्ञा पद भेद अगाधू॥
जो कोइ गुरु की अज्ञा भूलै। फिर फिर कष्ट गर्भ में झूलै॥
चरनदास गुरु अज्ञा पूरी। बिन अज्ञा करनी सब कूरी॥
अज्ञाकारी गुरुमुख नीके। सहजो लोक भोग सब फीके॥[30]

शिष्य को चाहिये कि लाभ-हानि, दु:ख-सुख, मान-अपमान की परवाह किये बिना, पूरे समर्पण से गुरु के हुक्म का पालन करे। गुरु के हुक्म का पालन करना शिष्य की सोच, रहनी और करनी का आधार बन जाना चाहिये। जो शिष्य तन-मन से गुरु के हुक्म का पालन करता है, उसके लोक-परलोक के सभी कार्य संपूर्ण हो जाते हैं। उसे गुरुमुख, हरिजन या साधु की उत्तम अवस्था प्राप्त हो जाती है। गुरु की आज्ञा में रहते हुए उसे प्रभु के अगम्य धाम का भेद प्राप्त हो जाता है। जो गुरु के हुक्म का पालन नहीं करते, उन्हें बार-बार आवागमन के दु:ख सहने पड़ते हैं तथा उनकी हर प्रकार की करनी व्यर्थ हो जाती है। दूसरी ओर जो शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, उन्हें सब भोग और रस फीके तथा व्यर्थ प्रतीत होते हैं। ऐसे शिष्य गुरु को प्रिय लगते हैं।

सिष का माना सतगुरु, गुरु झिड़कै लख बार।
सहजो द्वार न छोड़िये, यही धारना धार॥
गुरु दरसन कर सहजिया, गुरु का कीजै ध्यान।

गुरु की सेवा कीजिये, तजिये कुल अभिमान॥
सतगुरु दाता सर्ब के, तू किर्पिन कंगाल।
गुरु महिमा जानै नहीं, फस्यौ मोह के जाल॥
गुरु सूँ कछु न दुराइये, गुरु सूँ झूठ न बोल।
बुरी भली खोटी खरी, गुरु आगे सब खोल॥
सहजो गुरु रच्छा करैं, मेटैं सब दुख दुन्द।
मन की जानैं सब गुरु, कहा छिपावै अन्ध॥[31]

गुरु के हुक्म का पालन करने में ही शिष्य का वास्तविक मान-सम्मान है। गुरु जो कुछ करता है, उसमें शिष्य की भलाई छिपी होती है। सतगुरु की डाँट-डपट को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिये। कभी स्वप्न में भी गुरु की शरण त्यागने के बारे में नहीं सोचना चाहिये।

धर्म, जाति, कुल आदि के अभिमान को त्यागकर गुरु के द्वारा बतायी गयी सेवा में दृढ़ता से लग जाना चाहिये।

जब तक शिष्य मोह-ममता के जाल में फँसा है, तब तक वह सतगुरु के कार्यों का मर्म नहीं समझ सकता। उसको चाहिये कि मन की चालबाज़ी और कपट को एक ओर रखकर सतगुरु के उपदेश पर अमल करे। शिष्य कंगाल है; सतगुरु दाता हैं। प्रेम और विश्वास के साथ सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से शिष्य को सबकुछ प्राप्त हो जाता है।

शिष्य को अपने सतगुरु से कुछ नहीं छिपाना चाहिये। कोई भूल हो जाये तो सतगुरु के आगे उसे स्वीकार कर ले। सतगुरु अंतर्यामी और बख़्शिंद होते हैं। जब शिष्य मन की व्यथा सतगुरु को सुनाता है, तो सतगुरु वैद्य की भाँति उसे दु:ख दूर करने की दवा बता देते हैं और उस पर दया-मेहर भी करते हैं।

सखी री आज जन्मे लीला धारी

सखी री आज जन्मे लीला धारी।
तिमिर भजैगो भक्ति खिड़ैगी, पारायन नर नारी॥

दर्सन करतै आनँद उपजै, नाम लिये अघ नासै।
चर्चा में सन्देह न रहसी, खुलिहै प्रबल प्रगासै॥
बहुतक जीव ठिकानो पैहै, आवागवन न होई।
जम के दंड दहन पावक को, तिन कूँ मूल निकोई॥
होइ है जोगी प्रेमी ज्ञानी, ब्रह्म रूप ह्वै जाई।
चरनदास परमारथ कारन, गावै सहजो बाई॥[32]

जब लीलाधारी हरि सतगुरु का रूप धारण करके संसार में प्रकट होते हैं, तो अज्ञान का अंधकार दूर हो जाता है। प्रभुभक्ति की फुलवारी खिल उठती है और उनकी शरण में आये जीवों का भवसागर से उद्धार हो जाता है। सतगुरु के दर्शनों से सुख-शांति का एहसास होता है। सतगुरु के दिये नाम का सुमिरन करने से घोर पापों का नाश हो जाता है। उनके सत्संग द्वारा लोगों के भ्रम दूर होते हैं और ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है। अनेक जीव आवागमन के जाल से मुक्त होकर परमधाम पहुँच जाते हैं। उनके लिये यमराज के दंड और नरकों की आग की जड़ ही उखड़ जाती है। सतगुरु के उपदेश पर चलकर लोग सच्चे प्रेमी, ज्ञानी और योगी बन जाते हैं तथा प्रभु के साथ मिलाप करके उसका रूप हो जाते हैं।

हरि आये जन भेसा

सखी री आज धन धरती धन देसा।
धन डहरा मेवात मँझारे, हरि आये जन भेसा॥
धन भादों धन तीज सुदी है, धन दिन मंगलकारी।
धन दूसर कुल बालक जन्मयौ, फुल्लित भये नर नारी॥
धन धन माई कुञ्जो रानी, धन मुरलीधर ताता।
अगले दत्तव अब फल पाये, तिन कै सुत भयौ ज्ञाता॥
भरम नसावन भक्ति बढ़ावन, बहु पारायन करता।
सब फल दायक सब कुछ लायक, अघमोचन दुख हरता॥

अनगिन बरस बहुत चिरजीवौ, गुरु सुकदेव सहाई।
सहजो बाई देत असीसैं, पावै दरस बधाई॥[33]

धन्य है वह धरती, धन्य है वह देश जिसमें प्रभु ख़ुद संत के रूप में प्रकट होते हैं। वह महीना, वह दिन और समय धन्य है, जिसमें सतगुरु जन्म लेते हैं। धन्य है वह कुल और धन्य हैं वे माता और पिता जिनके शुभ कर्मों के फलस्वरूप उनके घर ऐसे ज्ञानी पुत्र का जन्म हुआ। अपनी शरण में आये अज्ञानी जीवों के भ्रमों का नाश करके सतगुरु उन्हें प्रभुभक्ति का मार्ग बताते हैं। उनके दु:खों और पापों का नाश करके मुक्ति की दात बख़्श देते हैं। सतगुरु के दर्शन करके मन शांत और तृप्त हो जाता है। ऐसे सतगुरु की आयु लंबी होने से लोगों को चिरकाल तक उनकी संगति से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

अस जन धन जननी जिन जाये

अस जन धन जननी जिन जाये।
दूसर कुल में भक्ति नहीं थी, जा कूँ तारन आये॥
कारन परमारथ तन धार्‌यौ, बहुतक जीव उबारे।
खेवट ह्वै भवसागर माहीं, सरन लगे सो तारे॥
मुक्ति सरूप भूप मन जोते, आसा सकल जराये।
भक्ति खेत में लोभ खरतवा, ता कूँ रहन न पाये॥
ज्ञान जोग को सूरज प्रगटयौ, बानी किरन पसारी।
चार दिसा में भयौ उजारो, चौंक उठे नर नारी॥
प्रेम झलाझल नैनन माहीं, हिरदे सीतलताई।
नख सिख सील सँतोष छिमा हीं, बरनै सहजो बाई॥[34]

धन्य है वह माता जो सतगुरु को जन्म देती है, वह कुल भी धन्य है, जिसमें सतगुरु जन्म लेते हैं। सतगुरु परमार्थ से अचेत जीवों को सचेत करके, उन्हें प्रभुप्राप्ति की सच्ची राह पर चलाने के लिए शरीर धारण करते हैं।

जो जीव सतगुरु की शरण में आ जाते हैं, सतगुरु उन्हें नामरूपी जहाज़ में बिठाकर भवसागर से पार कर देते हैं। सतगुरु जीव की भक्ति की खेती में बाधा डालनेवाले काम, क्रोध आदि खर पतवार दूर कर देते हैं। जब सतगुरुरूपी ज्ञान के सूर्य से बानी की किरणें निकलती हैं, तो चारों ओर अद्‌भुत प्रकाश हो जाता है। सतगुरु का हृदय शीतल होता है। उनके नयनों से प्रेम झलकता है। उनका रोम-रोम संयम, संतोष और क्षमा की मूरत होता है।

सखी री आज जनम लियौ सुखदाई

सखी री आज जनम लियौ सुखदाई।
दूसर कुल में प्रगट हुए हैं, बाजत अनँद बधाई॥
भादों तीज सुदी दिन मंगल, सात घड़ी दिन आये।
सम्बत सत्रहसाठ हुते तब, सुभ समयो सब पाये॥
जैजैकार भयौ मधि गाऊँ, मात पिता मुख देखौ।
जानत नाहिंन कौन पुरुष हैं, आये हैं नर भेखौ॥
संग चलावन अगम पन्थ कूँ, सूरज भक्ति उदय को।
आप गुपाल साध तन धारयौ, निहचै मो मन ऐसो॥
गुरु सुकदेव नाँव धरि दीन्ह्यौ, चरनदास उपकारी।
सहजो बाई तन मन वारै, नमो नमो बलिहारी॥[35]

सखी री आज आनँद देव बधाई॥
सतगुरु ने औतार लियो है, मिलि मिलि मंगल गाई॥
अद्‌भुत लीला कहा बखानौं, मो पै कही न जाई॥
बहु बिधि बाजे बाजन लागे, सुनत हिया हुलसाई॥
धन भादों धन तीज सुदी है, जा दिन प्रगटे आई॥
धन धन कुञ्जो भाग तिहारे, चरनदास सुत पाई॥
कलिजुग में हरि भक्ति चलाई, जन की करैं सहाई॥
श्री सुकदेव करी जब किरपा, गावै सहजो बाई॥[36]

पुत्र के जन्म पर चारों ओर खुशियाँ मनायी जाती हैं और मंगल गीत गाये जाते हैं। धन्य है वह सौभाग्यशाली माता जिसके घर युगपुरुष ने जन्म लिया हो, क्योंकि संतजन कलियुग में प्रभुभक्ति का प्रवाह चलाकर लोगों को धुरधाम पहुँचाने का उपकार करते हैं। सहजोबाई ऐसे दयालु सतगुरु के चरणों में बार-बार नमन करती हुई बलिहारी जाती हैं।

गुरु हैं चार प्रकार के

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग।
गुरु पारस दीपक गुरू, मलयागिरि गुरु भृंग॥[37]

लोहे कूँ पारस होय लागैं। कंचन करैं बेर नहिं ताकैं॥
सिष पलास चन्दन करि डारैं। मलयागिरि ह्वै कारज सारैं॥
सिष समान कीट के आवैं। भृंगी ह्वैकर ताहि बनावैं॥
करै भिरिंगी ढील न कोई। पलटै रूप पाछलो सोई॥
बिना लोय दीपक सिष परसैं। ह्वै दीपक तिनहूँ कूँ दरसैं॥
बकसैं अपनी जोति उजारा। होय चाँदना भवन मँझारा॥[38]

सहजोबाई पारस, चंदन, भृंगी और दीपक के चार दृष्टांत देकर समझाती हैं कि गुरु शिष्य को अपनी शरण में लेकर कैसे अपना रूप बना लेता है। जैसे पारस लोहे को सोना बना देता है, उसी प्रकार गुरु अपनी शरण में आये जीव के गुण-अवगुण नहीं देखता। वह अच्छे-बुरे, ऊँचे-नीचे, हर तरह के शिष्यों के अंदर पारमार्थिक गुण भर देता है। चंदन के पास उगे ढाक (पलाश) के वृक्ष भी चंदन की सुगंध से भर जाते हैं। भृंगी साधारण और निर्बल कीट को भी अपने ध्यान द्वारा अपना रूप बना लेता है। इसी प्रकार गुरु की शरण द्वारा शिष्य का कायाकल्प हो जाता है। जलते हुए दीपक की लौ के स्पर्श मात्र से बुझा हुआ दीपक भी जल उठता है। गुरु अपने प्रकाश द्वारा शिष्य के अंधकार से भरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश भर देता है।

चरनदास गुरु तत्त लखायौ

साधो मन माया के संग, सब जग रंग रह्यो॥ टेक॥
मूरख पचे खेल के अंधरे, नाना स्वाँग बनाय।
आसा धरि धरि नाचन लागे, चोवा चाह लगाय॥
जोग करै सिधि आठौं चाहै, मान बड़ाई हेत।
राज बासना भोग लोक के, कासी करवत लेत॥
पंच अगिन बहु तापन लागे, बहुत अर्धमुख झूल।
बहुतक दौड़ैं अठसठ तीरथ, ज्ञान गली गये भूल॥
चरनदास गुरु तत्त लखायौ, दीन्हे खेल छुटाय।
सहजो बाई सीस निवावत, बार बार बलि जाय॥[39]

संसार के सब लोग मन और माया के रंग में रँगे हुए हैं। मूर्ख लोग आशा-तृष्णावश तरह-तरह के स्वाँग करते हैं। लोग मान-सम्मान के लिए योग द्वारा ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। वे मनोवाँछित फल की प्राप्ति के लिए काशी में जाकर अपने आप को आरे से चिरवा लेते हैं। बहुत-से लोग चारों तरफ़ अग्नि जलाकर और सूर्य का ताप सहते हुए साधना करते हैं या फिर उलटे लटककर तप करते हैं। परमार्थ के सही रास्ते से अनजान अनेक लोग विभिन्न तीर्थों पर स्नान करने के लिए जाते हैं। सतगुरु जीव को ऐसे बहिर्मुखी कर्मकांड और हठकर्मों से निकालकर ध्यान को अंतर्मुख करने की प्रेरणा देते हैं, जिससे सारतत्त्व यानी असलियत का ज्ञान हो जाता है। सहजोबाई ऐसे दयानिधि सतगुरु पर बार-बार बलिहारी जाती हैं।

गुरु के पन्थ होय सो होई

गुरु के प्रेम पन्थ सिर दीजै। आगा पीछा कबहुँ न कीजै॥
गुरु के पन्थ होय सो होई। मारग आन चलौ मत कोई॥
गुरु के पन्थ पैज का पूरा। गुरु के पन्थ चलै सो सूरा॥
गुरु के पन्थ चलै सो जोधा। गुरु के पन्थ चलै का बोदा॥

गुरु के पन्थ नहीं ठग लागै। गुरु के पन्थ कपट भय भागै॥
गुरु के पन्थ मुक्ति उजियारा। गुरु के पन्थ नहीं संसारा॥
गुरु के पन्थ मिटै दुख दोई। गुरु के पन्थ महा सुख होई॥
चरनदास कौ पन्थ दुहेला। गुरमुख चालै ताहि सुहेला॥
गुरु के पन्थ चलै सतबादी। सहजो पावै भेद अनादी॥[40]

जब गुरु की शरण प्राप्त हो जाये तो अन्य सब साधनों की ओर से ध्यान हटाकर, अपना तन-मन समर्पित करके गुरु के बताये मार्ग पर चलना चाहिये। गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलना ही अपने गुरु पर विश्वास का पूर्ण होना है। सच्चा शूरवीर, गुरु के हुक्म का पालन करता है।

जैसे-जैसे जीव के अंदर गुरुमुखता विकसित होती है, उसे कठिन मार्ग सरल प्रतीत होने लगता है। धीरे-धीरे गुरु के हुक्म का पालन करना रसमय और आनंदमय बन जाता है। जो शिष्य शूरवीर योद्धा की तरह सदा आगे की ओर क़दम रखता है, वह दु:ख से सुख, बंधन से मुक्ति और द्वैत से अद्वैत में स्थिर हो जाता है। उसके अंतर से विषय-विकार, कपट आदि सब अवगुण दूर हो जाते हैं। ऐसा शिष्य एक दिन सहज सुख का अधिकारी बन जाता है और उसे परमपद प्राप्त हो जाता है। आलसी और निर्बल मनोबल वाला व्यक्ति गुरु के बताये हुए मार्ग पर कैसे चल सकता है?

गुरु-दोषी की गति मति गाऊँ

ऐसों का दरसन नहिं लीजै। चर्चा बात गोष्टि नहिं कीजै॥
उनका संग करै जो कोई। बेमुख निगुरा निन्दक होई॥
गुरु-दोषी की गति मति गाऊँ। अपने मनहीं कूँ समझाऊँ॥
उनकी चौरासी नहिं छूटै। काल जाल जम जोरा लूटै॥
फिर फिर जूनी संकट आवै। गर्भ बास में बहु दुख पावै॥
जग में पात बगूला जैसे। जीवत प्रेत निसाचर ऐसे॥
मन मैला तन सदा उदासी। गल में डिम्भ कपट की फाँसी॥
सहजो तिन तें दूरहि भाजै। नाम लेत मम रसना लाजै॥[41]

गुरु के निंदक और गुरु से विमुख लोगों की संगति से बचना चाहिये। ऐसे लोगों की संगति से मन पर दुष्प्रभाव पड़ता है। जो गुरु में दोष निकालते हैं, गुरु की निंदा करते हैं, वे चौरासी के चक्कर से मुक्त नहीं हो सकते। वे सदैव काल के जाल में फँसे रहते हैं और यमदूत ज़बरदस्ती उन्हें लूट लेते हैं। उन्हें बार-बार निकृष्ट योनियों में जन्म लेकर दु:ख भोगने पड़ते हैं। जिस प्रकार सूखा पत्ता हवा के भँवर में घूमता रहता है, उसी प्रकार वे लोग भी सदैव जगह-जगह भटकते हैं। उनका जीवन रात में विचरण करनेवाले भूत-प्रेत आदि जीवों की तरह होता है। उनका तन भी मलिन होता है और मन भी मलिन होता है। वे कपटी और धोखेबाज़ होते हैं। ऐसे लोगों से सदैव दूर रहना चाहिये।

बेमुख बिषई ज्ञान उचारै

बेमुख बिषई ज्ञान उचारै। पाँचों जीत न मन कूँ मारै॥
दारा सुत कूँ हरि गुरु जाने। तन मन विषय बास लिपटाने॥
पाप पुन्य कूँ झूठ बतावै। परनारी परधन चित लावै॥
महा अजोगी जोग न ठानै। छल बल झूठ कपट सिध मानै॥
साध संत कूँ ठगिया जानै। राम भक्ति कूँ तुच्छ बखानै॥
ऐसे अपराधी मति मारे। तृस्ना काम क्रोध के जारे॥
डूबे लोभ लहर के माहीं। सुपने छिमा सील चित नाहीं॥
हिंसा अंकुस लिये दुखदाई। मुख देखै नहिं सहजो बाई॥[42]

मनमुख लोग विषय-भोगों के ज्ञान की ही बातें करते हैं, मन और विकारों को वश में करने का प्रयत्न नहीं करते। वे स्त्री और बेटे-बेटियों को ही सर्वस्व समझते हैं। उनका ध्यान सदैव परधन और परायी स्त्री में रहता है। उन्हें प्रभुभक्ति तुच्छ प्रतीत होती है और विषय-भोग उत्तम लगते हैं। उनके लिए पाप और पुण्य में कोई भेद नहीं तथा वे सदैव छल-बल, झूठ और कपट में लिप्त रहते हैं। संतों को ठग कहते हुए सदैव आशा-तृष्णा तथा विकारों की आग में जलते हैं। उनके लोभ का अंत नहीं होता।

उनके जीवन में क्षमा और शील जैसे सद्गुणों का कोई स्थान नहीं है। उनकी हिंसक प्रवृत्ति दूसरों के लिये दु:खदायी बनी रहती है। भूले-भटके भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिये।

सहजो गुरु परसन्न ह्वै, एक कह्यौ परसंग

सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेटयौ मन सन्देह।
रोम रोम सूँ प्रेम उठि, भींज गई सब देह॥[43]

सहजो गुरु परसन्न ह्वै, एक कह्यौ परसंग।
तन मन तें पलटी गई, रँगी प्रेम के रंग॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूँद लिये दोउ नैन॥
फिर मो सूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन॥[44]

चिंउटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय॥[45]

सतगुरु जीव पर प्रसन्न होकर उसे प्रभुभक्ति की सही विधि बताते हैं। उनकी समझायी युक्ति के अनुसार जब आँखें मूँदकर चारों ओर फैले ध्यान को संसार और शरीर की तरफ़ से उलटाकर अंदर स्थिर कर लेते हैं, तब तन-मन से संसार का मोह निकल जाता है। सतगुरु की दया-मेहर से मन के सब संशय और भ्रम नष्ट हो जाते हैं और रोम-रोम प्रभुप्रेम के अमृत से सराबोर हो जाता है। हृदय प्रभुप्रेम के रंग में रँग जाता है। प्रभुप्राप्ति की यही निशानी है।

आंतरिक जगत् अति सूक्ष्म है। वहाँ चींटी और सरसों के दाने के समान सूक्ष्म वस्तु का भी पहुँचना या ठहर पाना बहुत कठिन है। अपने परमधाम पहुँचने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आत्मा का स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के परदे उतारकर पिंडी, अंडी और ब्रह्मांडी मन का साथ छोड़कर, परमचेतन अवस्था में आना आवश्यक है। फिर सतगुरु अपनी कृपा से आत्मा को उस परमधाम में बसा देता है।

गुरु के सब्द हिये बिच धारै

गुरु के सब्द हिये बिच धारै। गुरुमुख गुर के सब्द सम्हारै॥
तीन लोक जम जोरा लूटै। गुरु के सब्द बिना नहिं छूटै॥
मोह नींद में सब नर पागे। गुरु के सब्द बिना नहिं जागे॥
गुरु के सब्द स्रवन जो जावैं। छूटै कुबुधि परम गति पावैं॥
गुरु के सब्द प्रेम उजलावैं। गुरु के सब्द हरी आन मिलावैं॥
गुरु के सब्द जीव बुधि नासैं। गुरु के सब्द अभय पद भासैं॥
गुरु के सब्द राह सोई चलना। बेद पुरान कहा लै करना॥[46]

सारा संसार काल द्वारा फैलाये हुए मायाजाल में फँसा हुआ है। माया ने अपने बल से तीनों लोकों के जीवों को भ्रमित किया हुआ है। जो गुरुमुख शिष्य गुरु के उपदेश को हृदय में बसा लेता है, उसका इस जाल से छुटकारा हो जाता है। गुरु के उपदेश पर चले बिना मोहरूपी नींद से छुटकारा पाना असंभव है। जो सतगुरु से युक्ति प्राप्त करके शब्द को सुनने लगते हैं, उनके हृदय में सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जाता है। उनकी बुद्धि की सब चतुराई नष्ट हो जाती है। उन्हें हरि के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है और वे परमपद के अधिकारी बन जाते हैं। वेद-पुराणों का भी यही उपदेश है कि जीव का उद्धार गुरु के उपदेश पर अमल करने से ही होता है।

पूर्ण साधु की संगति

सहजोबाई ने अपनी बानी में इस सत्य को उजागर किया है कि केवल पूर्ण संत या पूर्ण साधु ही सतगुरु के रूप में कार्यशील होकर जीव का प्रभुप्राप्ति के लिए मार्गदर्शन कर सकता है।

साधु के लक्षण

साध सोई जो काया साधै। तजि आलस और बाद बिबादै॥
गहै धारना सब गति भारी। तजै बिकलता अस्तुति गारी॥
छिमावन्त धीरज कूँ धारै। पाँचो बस करि मन कूँ मारै॥
त्यागै झूँठ साँच मुख बोलै। चित इस्थिर इत उत ना डोलै॥
तन जग में मन हरि के पासा। लोक भोग सूँ सदा उदासा॥
जत सत नख सिख सीतलताई। तन मन बचन सकल सुखदाई॥
निर्गुन ध्यानी ब्रह्म गियानी। मुख सूँ बोलै अमृत बानी॥
समझ एकता भाव न दूजे। जिनके चरन सहजिया पूजे॥[1]

सहजोबाई पूर्ण साधु की अवस्था पर प्रकाश डालती हैं। वे कहती हैं: पूर्ण साधु उत्साह और उद्यम की साक्षात् मूरत होता है और अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है। जो भी कार्य करने का वह निर्णय लेता है, पूर्ण दृढ़ता से उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करता है। वह व्यर्थ के वाद-विवाद में समय बरबाद नहीं करता तथा स्तुति और निंदा से ऊपर उठ जाता है। उसमें क्षमा और धैर्य की भावना होती है। उसका मन निश्चल होता है,

पाँचों विकार उसके वश में होते हैं और वह सत्यवादी होता है। उसका शरीर जगत् में होते हुए भी मन हरि में समाया होता है। वह संयम और शीतलता का पुंज होता है, उसकी कथनी और करनी सुखदायक तथा कल्याणकारी होती है। उसके अमृत-भरे कोमल वचन मीठे, मधुर और सुखदायक होते हैं। वह तीनों गुणों की सीमा से ऊपर उठकर प्रभु के ध्यान में लीन रहने से प्रभु का रूप हो जाता है और पूर्ण अद्वैत की अवस्था में स्थिर हो जाता है। ऐसे साधु के चरणकमल पूजनीय हैं।

निर्दुन्दी निर्बैरता, सहजो अरु निर्बास।
सन्तोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस॥
ज्ञान मध्य इस्थिर दसा, ध्यान मध्य गलतान।
सहजो साधू राम के, तजैं बड़ाई मान॥[2]

हर प्रकार के वाद-विवाद से ऊपर उठ चुका प्रभु का भक्त, किसी से वैर-विरोध नहीं रखता। उसका हृदय वासनामुक्त और निर्मल होता है। वह हर हाल में संतुष्ट रहता है और प्रभु के अलावा किसी दूसरे से कोई आशा नहीं रखता। उसे ऐसी अद्भुत अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसमें उसका ध्यान आंतरिक प्रकाश में लीन रहता है। सच्चे साधु को मान-बड़ाई की कोई इच्छा नहीं होती, वह नम्रता का पुंज होता है।

दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन।
चेतनता हिरदे बसै, सहजो सीतल बैन॥
तन कूँ साधे ही रहैं, चित कूँ राखैं हाथ।
सहजो मन कूँ यौं गहैं, चलै न इन्द्रिन साथ॥
नित ही प्रेम पगे रहैं, छके रहैं निज रूप।
समदृष्टी सहजो कहै, समझैं रंक न भूप॥[3]

पूर्ण साधु सर्वज्ञ और निर्मल बुद्धिवाले होते हैं, उनकी दृष्टि में शील झलकता है। विवेकशील तथा मधुरभाषी होने के साथ-साथ वे इंद्रियों के दास नहीं, स्वामी होते हैं। वे मन के अधीन नहीं होते, बल्कि मन को वश में रखते हैं। उनका मन इंद्रियों के वश में होने के बजाय इंद्रियों को अपने वश में कर लेता है। अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप की पहचान कर वे सदैव प्रभु के प्रेम में मग्न रहते हैं। वे समदर्शी होते हैं और अमीर-ग़रीब, राजा और रंक के भेदभाव से ऊपर उठ चुके होते हैं।

दुर्जन ना साजन नहीं, नहीं बैर नहिं प्रीत।
सकल बिकल उनके नहीं, सहजो हरि जन रीत॥
सहजो हरि जन मुक्त हैं, डार दुई की पोट।
चाह गई संसा मिटा, बंधन छूटे कोट॥
राग द्वेष सूँ रहित हैं, बैरागी निरबन्ध।
सहजो इच्छा ना रही, माया ब्रह्म की संध॥[4]

पूर्ण साधु अपने-पराये, अच्छे-बुरे, दोस्त-दुश्मन, सुंदर-कुरूप के भेदभाव से ऊपर उठकर, द्वैत भाव का नाश करके पूर्ण अद्वैत में स्थिर हो जाते हैं। वे आशा-तृष्णा, संशय-भ्रम, मोह तथा ईर्ष्या के बंधन से पूर्णतया मुक्त होते हैं। उनके अंदर सच्चा वैराग्य होता है, जो उन्हें मोह-ममता तथा इच्छाओं से मुक्त कर देता है।

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरि नाम।
जो बोलैं तौ हरि कथा, भक्ति करैं नि:काम॥
तन मन मेटैं खेद सब, तज उपाधि की चाल।
सहजो साधू राम के, तजै कनक और बाल॥[5]

पूर्ण साधु का ध्यान जाग्रत अवस्था में प्रभु के नाम में और निद्रावस्था में सुन्न मंडल में लीन रहता है। उनके मुखारविंद से निकले वचन सदा

प्रभु की महिमा करते हैं। वे सांसारिक इच्छाओं से रहित होकर प्रभु की भक्ति में लीन रहते हैं। शरीर तथा परिवार के मोह से मुक्त वे सबकुछ उस प्रभु की अमानत समझकर इस्तेमाल करते हैं। उन्हें धन-दौलत का मोह नहीं होता। उनके हृदय में प्रभु का प्रेम समाया होता है। वे राम के होते हैं और राम उनका होता है।

सुरत नहीं ब्यौहार में, जगत रीत सूँ पीठ।
सनमुख हैं गुरु भक्ति में, सहजो हरि के ईठ॥
साध असंगी सँग तजैं, आतम ही को संग।
बोध रूप आन्नद में, पियैं सहज को रंग॥[6]

सच्चे साधुओं का ध्यान संसार के कार्य-व्यवहार में नहीं, बल्कि प्रभु की ओर होता है और वे संसार के रीति रिवाजों को अधिक महत्त्व नहीं देते। वे गुरुभक्ति तथा हरि के प्रेम में रँगे होते हैं। वे दुनियादारी में लिप्त नहीं होते, बल्कि सदैव अंतर में मग्न रहते हैं। वे ज्ञानरूप और आनंदरूप होकर सदैव सहज अवस्था में स्थिर रहते हैं।

साधु संगति की महिमा

साध मिले गुरु पाइया, मिटि गये सब सन्देह।
सहजो कूँ सम ही भयो, कहा गिरवर कहा गेह॥[7]

साध मिले पूरी भई, जनम जनम की आस।
सहजो पायौ भाव तें, सतसंगत में बास॥
सहजो साधन के मिले, मन भयो हरि के रूप।
चाह गई थिरता भई, रंक लख्यौ सोइ भूप॥[8]

साधु की शरण मिलने से हृदय में बसी शंकाएँ मिट जाती है। गृहस्थ तथा त्याग का अंतर समाप्त हो जाता है यानी घर-गृहस्थी छोड़कर पर्वतों

या जंगलों में जाने की आवश्यकता नहीं रहती। उसका जन्म-मरण का चक्कर समाप्त हो जाता है। गुरु के बताये साधन को अपनाने से उसका मन हरि के ध्यान में रमा रहता है। मायामय इच्छाएँ और तृष्णाएँ उसे आकर्षित नहीं करतीं। नामरूपी दौलत से जीव शहंशाह बन जाता है।

साध मिले हरि ही मिले, मेरे मन परतीत।
सहजो सूरज धूप ज्यों, जल पाले की रीति॥
साध मिले दुख सब गये, मंगल भये सरीर।
बचन सुनत ही मिटि गई, जनम मरन की पीर॥[9]

सहजोबाई कहती हैं कि जैसे सूर्य में धूप और जल में ठंडक स्वाभाविक रूप से होती है, उसी तरह साधु की संगति करने से जन्म-मरण के दु:खों का नाश हो जाता है और सच्चे आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

साध संग में चाँदना, सकल अँधेरा और।
सहजो दुर्लभ पाइये, सतसंगत में ठौर॥
सतसंगत की नाव में, मन दीजै नर नार।
टेक बल्ली दृढ़ भक्ति की, सहजो उतरै पार॥
साध संग तीरथ बड़ो, ता में नीर बिचार।
सहजो न्हाये पाइये, मुक्ति पदारथ चार॥[10]

संतों की संगति परम सौभाग्य से प्राप्त होती है। केवल साधु की संगति द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो सकता है, वरना हर तरफ़ अज्ञान का अंधकार ही है। साधु की संगतिरूपी नौका में मन को सवार करके उसे भक्तिरूपी चप्पू द्वारा खेने से जीव भवसागर से सहज ही पार हो जाता है। साधु की संगति ऐसा उत्तम तीर्थ है, जिसमें स्नान करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय॥
सहजो संगत साध की, काग हंस ह्वै जाय।
तजि के भच्छ अभच्छ कूँ, मोती चुगि चुगि खाय॥
जब चेतै जबही भला, मोह नींद सूँ जाग।
साधू की संगत मिलै, सहजो ऊँचे भाग॥
जो जन आवै टूट करि, साधू ह्वै दरसाय।
सहजो साँभर खेत में, गिरि साँभर ह्वै जाय॥[11]

जिस प्रकार सभी नदियाँ और नाले गंगा में समाकर गंगा का रूप हो जाते हैं, उसी प्रकार जो जीव जाति, वर्ण, कुल आदि का मान त्यागकर साधु की संगति में आ जाता है, वह निर्मल हो जाता है। वह कागवृत्ति का त्याग करके हंस के समान निर्मल हो जाता है अर्थात् वह इंद्रियों के भोगों की गंदगी त्यागकर नाम के मोती चुगना आरंभ कर देता है। साधु की संगति बहुत ऊँचे भाग्य से प्राप्त होती है। जो साधु की बतायी युक्ति द्वारा उसके हुक्म का पूरा पालन करता है, वह मोह की नींद से जाग उठता है। अंतर्मुखी साधना से अपने अंतर में प्रकाशमय सतगुरु के दर्शन करके जीव भी प्रकाशमय हो जाता है। जो चीज़ कल्लर यानी खारे खेत में गिर जाती है, वह भी खारी हो जाती है। अभिप्राय यह है कि संगति का प्रभाव अवश्य होता है।

सहजो संगत साध की, भली भई कुसलात।
नातर आवा गवन में, जम ही करते घात॥
सहजो संगत साध की, छूटै सकल बियाध।
दुर्मति पाप रहै नहीं, लागै रंग अगाध॥
साध बृच्छ बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगत बाग में, नाना फल रहे झूल॥
सहजो दरसन साध का, दो नैनों भरि लेहि।

तिहूँ ताप नसि जायँगे, सीतल होगी देहि॥
सहजो दरसन साध का, देखूँ वारूँ प्रान।
जिन की किरपा पाइये, निर्भय पद निर्बान॥[12]

साधु की संगति द्वारा जीव को यमदूतों से छुटकारा मिल जाता है, दुर्मति और पापों की मैल दूर हो जाती है और उस पर प्रभुभक्ति का गहरा रंग चढ़ जाता है। साधुजनों की संगति में ही परमार्थ फूलता-फलता है। साधु की संगति यानी साधु की शरण में उसके उपदेश पर चलने से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—तीनों तापों का नाश हो जाता है। आशा-तृष्णा की अग्नि शांत हो जाती है और मन में सच्ची शांति आ जाती है। सहजोबाई कहती हैं कि मैं सतगुरु के दर्शनों पर बलिहारी जाती हूँ, अपने प्राण न्योछावर करती हूँ जिनकी कृपा से जन्म-मरण के दु:ख दूर हो गये। वास्तव में सतगुरु की कृपा से ही परमपद की प्राप्ति हो सकती है।

साधु और सच्चा सुख

तीनों बन्ध लगाय के, अनहद सुनै टकोर।
सहजो सुन्न समाधि में, नहीं साँझ नहिं भोर॥[13]

'तीनों बन्ध लगाय के' अर्थात् मुँह, कानों और आँखों को बंद करके ध्यान को आँखों के निचले भाग से समेटकर आँखों से ऊपर स्थिर करना है। ध्यान आँखों से ऊपर भृकुटी के मध्य में पूरी तरह स्थिर हो जाने पर आँखों से नीचे का भाग सुन्न हो जाता है। इसे संतमत में पूर्ण एकाग्रता, समाधि या सुन्न समाधि की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में ध्यान स्वत: ही अंतर में निरंतर हो रही अनहद शब्द की ध्वनि में लीन हो जाता है। सहजोबाई समझाती हैं कि जिस भाग्यशाली जीव को यह उत्तम अवस्था प्राप्त हो जाती है, वह दिन-रात और समय-स्थान की सीमा से ऊपर उठ जाता है।

ना सुख बिद्या के पढ़े, ना सुख बाद बिबाद।
साध सुखी सहजो कहै, लागै सुन्न समाध।
मुए दुखी जीवत दुखी, दुखी भूख आहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ नित्त बिहार॥[14]

सच्चा सुख ग्रंथ-शास्त्रों के अध्ययन और उनके वाद-विवाद में नहीं है। न भूखे रहने में सुख है, न पेट भरकर खाने में, न जीवन में सुख है और न मृत्यु में। सच्चा सुख उसी साधु को प्राप्त होता है जो सुन्न समाधि की अवस्था प्राप्त करके नित्य अपने अंतर में विचरण करता है।

चाह दुखी आसा दुखी, महा दुखी अज्ञान।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ केवल ज्ञान॥
धनवन्ते सब ही दुखी, निर्धन हैं दुख रूप।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ भेद अनूप॥[15]

रंक दुखी राजा दुखी, दुखी सकल संसार।
साध सुखी सहजो कहै, पाया भेद अपार॥
ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।
साध सुखी सहजो कहै, तृस्ना रोग गये॥[16]

जिनके मन में संसार की आशा-तृष्णा समायी हुई है, वे अज्ञानी दु:ख की मूरत हैं। संसार में निर्धन ही नहीं, धनवान् भी दु:खी हैं। स्त्री, संतान व राजपाट का सुख अस्थायी है। केवल साधु को सहज सुख प्राप्त होता है, क्योंकि उसका तृष्णारूपी रोग ख़त्म हो जाता है और उसे अपने अंतर में अनुपम प्रभु का बोध हो जाता है।

पूर्ण साधु की अवस्था पर प्रकाश डालकर यहाँ सहजोबाई उस आदर्श और उत्तम अवस्था का चित्रण करती हैं, जिसकी प्राप्ति की सामर्थ्य प्रभु ने हर मनुष्य में रखी है। वर्तमान अवस्था में निर्बल, अज्ञानी जीव

दु:खों की निरंतर चल रही चक्की में पिस रहा है। लेकिन पूर्ण साधु की शरण में जाकर वह प्रभु की भक्ति द्वारा मन-इंद्रियों से ऊपर उठकर, कर्मों के जाल से मुक्त होकर अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप की पहचान कर सकता है। संसार के भ्रमजाल से पूर्णतया मुक्त होकर वह पूर्ण अद्वैत की निश्चल अवस्था प्राप्त करने में समर्थ है।

नाम का अंतर्मुखी अभ्यास

सहजोबाई ने अपनी बानी में जीव को गुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति करने का उपदेश दिया है। वे दृढ़ता से कहती हैं कि आध्यात्मिक अभ्यास मनमाने ढंग से नहीं, बल्कि गुरु द्वारा समझायी युक्ति के अनुसार करना है। अन्य हर प्रकार की बहिर्मुखी भक्ति को त्यागकर केवल नाम की साधना में लगना चाहिये। पारमार्थिक भाषा में इसे नाम का अभ्यास या भजन-सुमिरन भी कहा जाता है।

सहजोबाई जीव की वर्तमान अवस्था का स्पष्ट चित्रण करते हुए उसे प्रभु के नाम सुमिरन की प्रेरणा देती हैं।

साधो मन माया के संग, सब जग रंग रह्यो॥ टेक॥
मूरख पचे खेल के अंधरे, नाना स्वाँग बनाय।
आसा धरि धरि नाचन लागे, चोवा चाह लगाय॥
जोग करै सिधि आठौं चाहै, मान बड़ाई हेत।
राज बासना भोग लोक के, कासी करवत लेत॥
पंच अगिन बहु तापन लागे, बहुत अर्धमुख झूल।
बहुतक दौड़ैं अठसठ तीरथ, ज्ञान गली गये भूल॥
चरनदास गुरु तत्त लखायौ, दीन्हे खेल छुटाय।
सहजो बाई सीस निवावत, बार बार बलि जाय॥[1]

संसार के लोग माया के मोह में रँगे हुए हैं, लोगों के हृदय में प्रभु से मिलाप की इच्छा नहीं है। माया में लिप्त, भ्रमित, अज्ञानी जीव अनेक प्रकार के स्वाँग रचते हैं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए मन के इशारों पर नाच रहे हैं। यहाँ तक कि योगीजन भी आठ सिद्धियों की प्राप्ति के लिए ही योग साधना करते हैं, ताकि उनकी हर तरफ़ प्रसिद्धि हो जाये। कई लोग अगले जन्म में स्वर्ग के सुख अथवा सुख-समृद्धि की कामना से काशी जाकर आरे से सिर कटवा लेते हैं। किसी ने चारों ओर धूनियाँ रमाई हुई हैं और पाँचवाँ सूर्य ऊपर तप रहा है। कई लोग उलटे लटककर भक्ति कर रहे हैं। कई मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए अड़सठ तीर्थों की यात्रा कर रहे हैं। लेकिन गुरु इस प्रकार के बहिर्मुखी प्रपंचों की ओर से ध्यान हटाकर अपने शिष्यों को नाम की अंतर्मुख साधना के रूप में सच्ची भक्ति की विधि सिखाता है।

मेंह सहै सहजो कहै, सहै सीत और घाम।
पर्वत बैठो तप करै, तौ भी अधिको नाम॥[2]

चाहे कोई वर्षा का प्रकोप सहे या भीषण सर्दी और गरमी का ताप सहन करता हुआ तप करे या फिर घरबार छोड़कर पर्वत की गुफा में बैठकर साधना करे, ये सभी साधन प्रभु के नाम की भक्ति के तुल्य कभी नहीं हो सकते, क्योंकि नामभक्ति इन सबसे ऊपर है।

कनक दान गज दान दे, उनन्चास भू दान।
निस्चै करि सहजो कहै, ना हरि नाम समान॥[3]

चाहे कोई सोने के ढेर दान कर दे, अनगिनत हाथी और बार-बार भूमि दान करे, तब भी वह हरिनाम के अभ्यास की बराबरी नहीं कर सकता। भाव यह कि गुरु हर प्रकार के कर्मकांड और बहिर्मुखी भक्ति

को अपूर्ण बताते हुए शिष्य को केवल हरिनाम की अंतर्मुख साधना में लगाता है। अन्य कोई साधन इस साधना के तुल्य नहीं है।

सहजोबाई सावधान करती हैं:

जज्ञ दान तीरथ करै, पूजा भाँति अनेक।
मुक्ति न पावै सहजिया, बिना भक्ति हरि एक॥[4]

बिना भक्ति थोथे सभी, जोग जज्ञ आचार।
राम नाम हिरदे धरो, सहजो यही बिचार॥[5]

जोग जज्ञ तीरथ ब्रत साधै, पावत नाहीं कूर।[6]

जिन को ज्ञान गुरू को नाहीं, सो जानत हैं दूर।...
चरनदास गुरु मोहिं बतायौ, सहजो सभ का मूर॥[7]

सहजोबाई का अभिप्राय यह नहीं है कि भक्ति के अन्य साधनों का कोई लाभ नहीं है। हर प्रकार की भक्ति का कुछ न कुछ लाभ अवश्य है। दान-पुण्य से अगले जन्म में सेठ-साहूकार बन जायेंगे। अन्य उत्तम कर्मों से राजा-महाराजा बन जायेंगे, स्वर्ग या बैकुंठ में पहुँच जायेंगे। परंतु उन कर्मों का फल एक निश्चित समय के लिये होगा और उस अवधि के समाप्त हो जाने पर फिर मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ेगा, मुक्ति का साधन केवल परमात्मा की भक्ति है।

सहजोबाई समझाती हैं कि यज्ञ, दान, तीर्थयात्रा और अन्य प्रकार की पूजा, मुक्ति के साधन नहीं हैं। अज्ञानी लोग प्रभु को दूर समझकर उसकी खोज में बाहर भटकते फिरते हैं, लेकिन उस प्रभु के नाम को हृदय में धारण किये बिना अन्य कोई साधन कारगर नहीं होता।

संत चरनदास जी की बानी में भी यही भाव है:

करै तपस्या नाम बिन, जोग जज्ञ अरु दान।
चरनदास यों कहत हैं, सब हीं थोथे जान॥[8]

तप तीरथ ब्रत साधना, राम नाम सम नाहिं॥[9]

जिज्ञासु के मन में प्रश्न उठता है कि प्रभु की तलाश कैसे की जाये? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सहजोबाई समझाती हैं कि किसी पूर्ण महात्मा के सत्संग द्वारा आत्मा और परमात्मा के संबंध और आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। सत्संग द्वारा ही संसार की नश्वरता समझ आती है। जीवात्मा को कर्म और कर्मफल के अटल नियम तथा चौरासी के बंधन का ज्ञान होता है और इस बंधन को तोड़ने के सच्चे साधन की जानकारी प्राप्त होती है। संतों के सत्संग के निर्मल आध्यात्मिक वातावरण में जीव के अंदर भक्ति की भावना उत्पन्न होती है।

सत्संग दो प्रकार का है: बाहरी और आंतरिक। परमात्मारूपी सत्य में समाकर परमात्मा का रूप हो चुके महात्मा की संगति बाहरी सत्संग है। ध्यान को अंदर स्थिर करके शब्द की ध्वनि और शब्द के प्रकाश के साथ जोड़ना आंतरिक सत्संग है। बाहरी सत्संग के बिना आंतरिक सत्संग प्राप्त कर पाना असंभव है। इसी लिए बाहरी सत्संग की महिमा भी अपरंपार है।

सत्संग द्वारा जीव की कथनी और करनी में निर्मलता आती है। 'सत ही मुख सूँ बोलिए सत ही कीजै ध्यान॥'[10] उसके अंदर से झूठे संसार और इसके संबंधों का मोह फीका पड़ने लगता है और सच्चे प्रभु के साथ प्रेम बढ़ने लगता है। इसकी वृत्ति सांसारिक के बजाय पारमार्थिक हो जाती है। जो ध्यान सदा मायामय जगत् में लगा रहता था, अब सच्चे गुरु, सच्चे नाम और सच्चे प्रभु की ओर पलट जाता है। लेकिन सत्संगति के

अभाव में जीव का विवेक जाग्रत नहीं होता और वह अज्ञानता के अँधेरे में डूबा रहता है।

अज्ञानी जीव संसार में चल रहे चौबीसी के खेल को समझने का प्रयत्न नहीं करता। 'चौबीसो समझै नहीं कैसे छूटै खेद॥'[11] परिणाम यह होता है कि जीव सदा अज्ञानता के अँधेरे में भटकता रहता है और दु:खों की मार खाता है। सांख्य दर्शन में प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए चौबीसी (4+20=24) का विवरण इस प्रकार से दिया गया है: बुद्धि; अहंकार; मन; चित्त; पाँच ज्ञानेंद्रियाँ; पाँच कर्मेंद्रियाँ; पाँच तन्मात्राएँ* और पाँच तत्त्व—ये सब मिलकर चौबीस बनते हैं। पाँच कर्मेंद्रियाँ और पाँच ज्ञानेंद्रियाँ सांसारिक कार्य-व्यवहार के लिए हैं। आत्मा का केंद्र दस इंद्रियों से ऊपर है। जीव का ध्यान आँखों के ऊपर से उतरकर दस इंद्रियों के द्वारा सारे संसार में फैल जाता है।

सहजोबाई इस सारी प्रक्रिया को समझाते हुए कहती हैं: आत्मा और परमात्मा के बीच सबसे बड़ी रुकावट मन और इंद्रियों की है। परमात्मा का निवास शरीर के अंदर आँखों से ऊपर है, परंतु मन-इंद्रियाँ ध्यान को बार-बार ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर की ओर खींचती हैं।

'कैसे छूटै खेद पंच कूँ जीतै नाहीं।'[12]—जीव यह समझने की कोशिश नहीं करता कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पाँच विकार तो जीव को संसार के नाटक के साथ बाँधकर रखने के लिए बुना गया माया का जाल है। 'और पचीसौं संग रहै उनके ही माहीं॥'[13]—पाँच तत्त्वों की पाँच-पाँच प्रकृतियाँ मिलकर पच्चीस प्रकृतियाँ बन जाती हैं। जागना, सोना, हँसना, रोना आदि सब प्रकृतियाँ हैं। जीव सदा इनमें डाँवाँडोल होता रहता है। इसको सहज अवस्था और उसकी प्राप्ति के साधन का ज्ञान नहीं, इसी लिये यह सदा दु:खों की चक्की में पिसता रहता है।

---

* रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द

'दोय सदा लागी रहै चौरासी के फेर।'[14]—अज्ञानी जीव अच्छे-बुरे, दोस्त-दुश्मन, अपने-पराये, दु:ख-सुख की भावना का शिकार है। यह भावना मन-माया द्वारा उत्पन्न की हुई है। प्रभु के अतिरिक्त अन्य सबकुछ माया द्वारा उत्पन्न किया हुआ भ्रम है। इस भ्रम का शिकार होकर जीव जो-जो कर्म करता है, वे इसको आवागमन के चक्कर के साथ बाँध देते हैं।

पाँच विकारों के दुष्प्रभाव की व्याख्या करते हुए सहजोबाई कहती हैं: 'निन्दा हिंसा त्याग करि'[15]—निंदा के पीछे अपने आप को बड़ा और दूसरे को छोटा समझने का भाव छिपा होता है। निंदा की जड़ अहंकार है। अहंकार सबसे ख़तरनाक विकार है। किसी दूसरे को छोटा या घटिया समझना, मानो अपने सृजनहार को छोटा और घटिया समझना है। पूर्व कर्मों के कारण हर प्राणी अलग-अलग रूप और अवस्था में विचरण करता है, परंतु आत्मा सब में एक समान है। जब सबकी आत्मा एक समान है, परमात्मा की अंश है तो किसी की भी निंदा करना सृजनहार की निंदा है। इसलिए सबसे पहले निंदा का त्याग कर देना चाहिये।

दूसरे जीवों को दु:ख देना, उनकी हत्या करना मानो आध्यात्मिक उन्नति की जड़ काटना है। हर जीव के अंदर एक ही प्रभु की ज्योति समायी हुई है। एक तरफ़ किसी को दु:ख देना या जीवों की हत्या करना और दूसरी तरफ़ प्रभु की भक्ति में उन्नति कर पाना, यह तो दिन और रात को इकट्ठा करने के समान असंभव है। साधक को चाहिये कि कठोर वचनों द्वारा किसी का दिल न दुखाये, वह मधुरभाषी हो।

आध्यात्मिक अभ्यास में सफलता के लिये सहजोबाई ने उपदेश दिया है, 'तामस कूँ दे पीठ।'[16]—विषयों के त्याग की तरह तामसिक भोजन और तामसिक वृत्ति का त्याग भी आवश्यक है। तामसिक भोजन में मांस, मछली, अंडे, शराब, नशे और पचाने में कठिन सभी पदार्थ सम्मिलित हैं। ये पदार्थ नींद, आलस्य, उत्तेजना आदि उत्पन्न करनेवाले हैं। उद्देश्य के अनुकूल भोजन, वृत्ति, सोच और रहन-सहन अपनाना आवश्यक है। परमार्थी का भोजन और उसकी वृत्ति सांसारिक लोगों जैसी नहीं होनी चाहिये। उसे मन को शांत करनेवाला सात्त्विक भोजन करना चाहिये जो नींद, आलस्य और मन की उत्तेजना को वश में रखने के लिए सहायक होगा।

सहजोबाई समझाती हैं कि परमात्मा के साथ मिलाप के इच्छुक को सबसे पहले जगत् और इसके पदार्थों के मोह से उपराम होना होगा। उसको और क्या करना चाहिये? 'कलह कल्पना छाँड़ि के आतम में करि बास॥'[17]—जीव को चिंता, भय, भ्रम आदि को त्यागकर प्रेम और विश्वास के साथ ध्यान को अंतर्मुख करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिए बाहरी भटकन त्यागकर शांतिपूर्वक बैठकर ध्यान को अंतर में टिकाने का अभ्यास करना आवश्यक है।

'चित मन बुधि हंकार कूँ करौ इकट्ठे आन।'[18]—वृत्तियों के आधार पर अंत:करण के चार अंग हैं: मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। इसलिए चाहे मन तो एक ही है, लेकिन इसके चार रूप हैं। सबसे पहले मन में कुछ करने या प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। चित्त मन के सामने उसका चित्र अथवा स्वरूप खड़ा कर देता है। बुद्धि निर्णय करती है कि वह कार्य करना चाहिये या नहीं, वह वस्तु प्राप्त करनी है या नहीं। अहंकार उस निर्णय के अनुसार जीव को सक्रिय कर देता है। सहजोबाई समझा रही हैं कि सबसे पहले शरीर को पूर्णतया स्थिर करना चाहिये। उसके बाद मन को इस तरह शांत कर लेना चाहिये कि इसमें कोई इच्छा या संकल्प उत्पन्न न हो और न ही चित्त, बुद्धि और अहंकार को कार्यशील होना पड़े। भाव यह कि मन में किसी वस्तु या पदार्थ का विचार न उठे और यह पूरी तरह से परमात्मा के नाम-सुमिरन में लगा रहे।

मन की तीन अवस्थाएँ हैं। 'सहजो निज मन होय जब निस्चल लागै ध्यान॥'[19] इनके अनुसार मन को पिंडी मन, अंडी मन और ब्रह्मांडी मन कहा जाता है। स्थूल शरीर में पिंडी मन, सूक्ष्म शरीर में अंडी मन और कारण शरीर में ब्रह्मांडी अर्थात् निज मन कार्यशील होता है। जब अनहद शब्द के साथ जुड़कर मन और आत्मा त्रिकुटी में पहुँच जाते हैं तो निज मन अपने स्रोत में समा जाता है, क्योंकि मन का स्रोत ही दूसरा आंतरिक

मंडल त्रिकुटी है। मन से अलग हुई आत्मा तीसरे आंतरिक मंडल में पहुँच जाती है। अब शरीर, मन और इंद्रियों की पकड़ से स्वतंत्र हुई आत्मा उस मंडल में अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेती है और परमात्मा के साथ मिलाप करने के योग्य बन जाती है।

'ध्याता थाके ध्यान में ध्यान ध्येय के माहिं।'[20]—शुरू में ध्यान करनेवाला जीव, ध्यान और जिसका ध्यान किया जाता है, ये तीनों अलग-अलग होते हैं। जब साधक पूर्ण एकाग्रता द्वारा एकचित्त होकर अपनी सुरत और निरत अर्थात् आत्मिक शक्तियों को शब्द में लीन कर देता है तो ध्यान करनेवाला, ध्यान और जिसका ध्यान किया जाता है, यह त्रिपुटी समाप्त हो जाती है और ये तीनों एक हो जाते हैं। भाव यह है कि सुरत और निरत के शब्द में लीन होने से आत्मा परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो जाती है।

इस समय जीव जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, तीन अवस्थाओं में विचर रहा है। तीनों अवस्थाओं की सीमा पार करने पर आत्मा तुरीयावस्था में पहुँचती है। 'तीन अवस्था छोड़ि जाय तुरिया सूँ पागौ॥'[21] 'निराकार निर्गुन तहाँ इकरस चेतन रूप।'[22]—इस निर्गुण अवस्था में उसे निराकार प्रभु का बोध हो जाता है। इससे पहले चेतन आत्मा की गाँठ जड़ मन से बँधी हुई थी। गाँठ खुलने पर आत्मा पूर्णतया चेतन हो जाती है। पहले आत्मा राग-द्वेष, दु:ख-सुख के दायरे में क़ैद थी, लेकिन अब इसे सदैव एकरस रहनेवाली सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है। इस अवस्था में आत्मा को ज्ञान के लिए मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की आवश्यकता नहीं रहती। आत्मा त्रिकालदर्शी हो जाती है। अब संपूर्ण सृष्टि इसके लिए खुली किताब है। वर्तमान ही नहीं, इसे भूत और भविष्य के बारे में भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

सहजोबाई जीव को समझाती हैं कि मनुष्य-जन्म के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नाम का अभ्यास ज़रूरी है, क्योंकि इसी से अंत:करण निर्मल होता है और जीव अमरपुर धाम का अधिकारी बन सकता है।

बाबा काया नगर बसावौ।
ज्ञान दृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरति लौ लावौ॥
पाँच मारि मन बसि कर अपने, तीनौं ताप नसावौ।
सत सन्तोष गहौ दृढ़ सेती, दुर्जन मारि भजावौ॥
सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बंब बजावौ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम बजार लगावौ॥
सुबस बास होवै जब नगरी, बैरी रहै न कोई।
चरनदास गुरु अमल बतायौ, सहजो सँभलौ सोई॥[23]

काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निस्चै सहजो मुक्ति ह्वै, लहै अमरपुर धाम॥[24]

आध्यात्मिक उन्नति के इच्छुक साधक को चाहिये कि सतगुरु की समझायी युक्ति के अनुसार प्रभु के नाम का सुमिरन करे और इसमें बाधा डालनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि विकारों को त्यागकर अपने अंदर शील, क्षमा, संतोष, विवेक और नम्रता के गुण धारण करे, इससे जीव के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक कष्ट दूर हो जायेंगे। उसे चाहिये कि पाप के बनिये को अंतर से निकालकर सत्य के व्यापार की वृत्ति धारण करे। जब देहरूपी नगरी हर प्रकार के विषय विकार से मुक्त हो जाती है तो साधक पवित्र हो जाता है। जीव अंतर्मुख अभ्यास में लीन हो जाता है और प्रभु के अविनाशी धाम को प्राप्त कर लेता है।

सील छिमा संतोष गहि, पाँचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीत॥[25]

मुक्ति का एकमात्र साधन—नाम

ज्यों त्यों राम नाम ही तारै।
जान अजान अग्नि जो छूवै, वह जारै पै जारै॥

उलटा सुलटा बीज गिरै ज्यौं, धरती माहीं कैसे।
उपजि रहै निहचै करि जानौ, हरि सुमिरन है ऐसै॥
बेद पुरानन में मथि काढ़ा, राम नाम तत सारा।
तीन कांड में अधिकी जानौ, पाप जलावनहारा॥
हिरदा सुद्ध करै बुधि निरमल, ऊँची पदवी देवै।
चरनदास कहैं सहजो बाई, ब्याधा सब हरि लेवै॥[26]

सहजोबाई कहती हैं कि जन्म-मरण के दु:खों से मुक्ति दिलाने का एकमात्र साधन प्रभु के नाम का सुमिरन है। अनपढ़ या विद्वान्, अज्ञानी या ज्ञानी, जो कोई भी नाम की कमाई करता है, उसका उद्धार निश्चित है। खेत में उलटा पड़ा बीज भी अंकुरित हो जाता है और सीधा पड़ा भी। उसी प्रकार हरिनाम का सुमिरन जिस भाव से भी किया जाये, एक दिन अवश्य फलीभूत होता है। वेद-पुराणों और अन्य सब धर्मग्रंथों का सार यही है कि परमात्मा का नाम ही परमतत्त्व है, सार पदार्थ है। बाक़ी सब नश्वर है। अविनाशी पदार्थ केवल हरि का नाम है। नाम का सुमिरन मन और बुद्धि को निर्मल कर देता है। सतगुरु ने कृपा करके जिस जीव के हृदय में नाम का बीज बो दिया, वह जीव चाहे कैसा भी रहा हो, नाम सुमिरन से वह भवसागर से अवश्य पार हो जायेगा।

सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस घर घोर।
ता में नाम जहाज है, पार उतारैं तोर॥[27]

सहजो नौका नाम है, चढ़ि के उतरौ पार।
राम सुमिरि जान्यो नहीं, ते डूबे मँझधार॥[28]

सहजोबाई कहती हैं: संसाररूपी सागर में चारों ओर अज्ञानता का घोर अंधकार है। केवल नाम के जहाज़ द्वारा ही इसे पार किया जा सकता है। इसलिये भवसागर से पार होने के लिए हरिनाम की नौका में सवार

हो जाओ। जो लोग नाम की नौका छोड़कर किसी अन्य साधन का सहारा लेते हैं, वे मँझधार में ही डूब जाते हैं।

राम नाम ले सहजिया, दीजै सर्ब अकोर।
तीन लोक के राज लों, अन्त जाहुगे छोर॥[29]

सहजोबाई ने स्पष्ट कहा है: हे प्रभु के प्यारे! अपना सबकुछ प्रभु को समर्पित करके उसके नाम का सुमिरन करो। यदि संपूर्ण त्रिलोकी का राज्य भी मिल जाये, तो वह भी अंत समय में छोड़कर जाना पड़ेगा, केवल प्रभु का नाम ही सहायक होगा।

हमरे औषध नाँव धनी का।
आध ब्याध तन मन की खोवै, सुद्ध करै वह नीका॥
अमर भये जिन जिन यह खाई, भव नगरी नहिं आये।
जो पछ करै सँभल दृढ़ राखै, सतगुरु बैद बताये॥[30]

प्रभु का नाम तन-मन के सब रोगों की अचूक औषधि है। जो लोग सतगुरुरूपी वैद्य की बतायी युक्ति के अनुसार नामरूपी औषधि का प्रयोग करते हैं और हानिकारक विकारों से परहेज़ रखते हैं, वे जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं और अमरपद के अधिकारी बन जाते हैं।

पावक नाम जलाइ है, पाप ताप दु:ख दुन्द।
राम सुमिर सहजो कहै, जो बिसरै सो अन्ध॥[31]

प्रभु का नाम पापों और उनसे उत्पन्न होनेवाले सब दु:खों को जलाकर राख कर देता है। इसलिये प्रभु के नाम का सुमिरन करना चाहिये–जो नाम का सुमिरन नहीं करता, वह महा अज्ञानी है। वह अंधे के समान है।

जन्म मरन बंधन कटै, टूटै जम की फाँस।
राम नाम ले सहजिया, होय नहीं जग हाँस॥[32]

चौरासी के दु:ख छुटैं, छप्पन नर्क तिरास।
राम नाम ले सहजिया, जम पुर मिलै न बास॥[33]

हरिनाम के सुमिरन से जन्म-मरण के बंधन टूट जाते हैं। उसे धर्मराज के दरबार में नहीं जाना पड़ता। उसे यमदूतों तथा नरकों की यातनाएँ भी सहन नहीं करनी पड़तीं।

गर्भ बास संकट मिटै, जठर अगिन की आँच।
राम नाम ले सहजिया, मुख सूँ बोलो साँच॥[34]

जब तक आवागमन का सिलसिला बना रहता है, जीव को बार-बार माता के गर्भ की अग्नि में तपना पड़ता है। प्रभु के नाम से लिव जोड़ने पर आवागमन का सिलसिला समाप्त हो जाता है और बार-बार जठराग्नि की तपन सहन करने से छुटकारा मिल जाता है। सहजोबाई कहती हैं कि परमात्मा के नाम का सुमिरन करना चाहिये और मुख से सत्य वचन बोलने चाहियें।

नाम का सुमिरन

सुमिरन संस्कृत के शब्द 'स्मरण' से बना है जिसका अर्थ है याद करना। सुमिरन करना मन का स्वभाव है। मन क्षणभर के लिए भी सुमिरन से ख़ाली नहीं रहता। यह पल-पल संसार के रूपों और पदार्थों का सुमिरन करता रहता है। मन जिन पदार्थों का सुमिरन करता है, उनके साथ इसका मोह उत्पन्न हो जाता है। रचना में आने पर आत्मा को मन का साथ दिया गया है और यह मन संसार तथा इसके पदार्थों के सुमिरन में लगा हुआ है। परिणामस्वरूप मन और आत्मा को अपने असली घर की याद नहीं रही।

मन और आत्मा के अंदर संसार के सुमिरन के भंडार जमा हो चुके हैं। जब तक मन और आत्मा हरिनाम के निरंतर सुमिरन द्वारा संसार के सुमिरन से मुक्त नहीं होते, तब तक वे अपने अंतर में स्थिर नहीं हो सकते और न ही निज घर वापस जा सकते हैं।

सहजो सुमिरन सब करैं, सुमिरन माहिं बिबेक।
सुमिरन कोई जानि है, कोटों मद्धे एक॥[35]

सहजोबाई कहती हैं कि जीव के लिये प्रभु के नाम का सुमिरन करना ही विवेकपूर्ण कार्य माना गया है। सुमिरन तो सभी करते हैं, कोई मुख से ऊँचा-ऊँचा बोलकर सुमिरन करता है और कोई कंठ द्वारा। इस प्रकार मनमरज़ी से तो सभी सुमिरन करते हैं, परंतु नाम के सुमिरन की सही विधि का ज्ञान करोड़ों लोगों में किसी विरले को ही है।

सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदे माहिं दुराय।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय॥[36]

राम नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार।
सहजो कै कर्तार ही, जानै ना संसार॥[37]

सुमिरन चुपचाप मन द्वारा करना चाहिये। न जीभ हिलनी चाहिये और न होंठ हिलने चाहिएँ। सुमिरन इस प्रकार करना चाहिये कि केवल सुमिरन करनेवाले को और जिसका सुमिरन किया जा रहा है यानी उस प्रभु को पता हो। संसार को जताने के लिये सुमिरन करना तो अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाना है।

वर्तमान अवस्था में मन सांसारिक पदार्थों के सुमिरन में लीन है, इसी कारण मन और आत्मा पर माया-मोह की मैल चढ़ती जा रही है। लेकिन जब सतगुरु के उपदेश के अनुसार जीव अंतर्मुख होकर प्रभु के

नाम का सुमिरन करने लगता है, तो मन और आत्मा निर्मल होने लगते हैं। सहजोबाई जीव को प्रेरणा देती हैं कि ध्यान निरंतर सुमिरन में ही रहना चाहिये।

बैठे लेटे चालते, खान पान ब्यौहार।
जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार॥
जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय।
सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय॥
आठ पहर सुमिरन करै, बिसरै ना छिन एक।
अष्टादस और चार में, सहजो यही बिसेष॥[38]

सहजोबाई उपदेश देती हैं: **'बैठे लेटे चालते, खान पान ब्यौहार।'** यानी चलते-फिरते, खाते-पीते, संसार के सभी कार्य-व्यवहार करते हुए मन ही मन नाम का सुमिरन करते रहना चाहिये। **'जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय।'**—केवल जागते हुए ही नहीं, सोते समय भी सुमिरन करना चाहिये। मन में आश्चर्य होता है कि सोते समय सुमिरन कैसे किया जा सकता है? वर्तमान अवस्था में नींद में संसार के स्वप्न आते हैं। यह संसार का सुमिरन है। प्रभु के नाम का सुमिरन करते-करते साधक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ सुमिरन का प्रवाह स्वयं चलता रहता है। वह प्रवाह सोते समय भी जारी रहता है।

शुरू में सुमिरन करने के लिए मन के साथ कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। मन बार-बार संसार के सुमिरन की ओर जाता है। जैसे अंधकार का नाश केवल प्रकाश ही कर सकता है, उसी प्रकार केवल हरिनाम का निरंतर सुमिरन ही मन से संसार का मोह निकाल सकता है। **'आठ पहर सुमिरन करै, बिसरै ना छिन एक।'**—दिन-रात साँस-साँस के साथ सुमिरन का प्रवाह चलता रहना चाहिये।

सहजोबाई कहती हैं: मेरा यह उपदेश नया या अलग नहीं है। चारों वेदों, अठारह पुराणों तथा अन्य सब धर्मग्रंथों में भी यही उपदेश दिया

गया है कि केवल प्रभु के नाम का सुमिरन ही मन को संसार के सुमिरन से मुक्त कर सकता है और मन तथा आत्मा की गाँठ को खोल सकता है।

हंसा सोहं तार कर, सुरति मकरिया पोय।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय॥
बरत बाँध कर धरन में, कला गगन में खाय।
अर्ध उर्ध नट ज्यौं फिरै, सहजो राम रिझाय॥[39]

आध्यात्मिक अभ्यास में आत्मा की चार चालें मानी गयी हैं—चींटी चाल, मकड़ी चाल, मीन चाल और विहंगम चाल। चींटी दीवार पर चढ़ने का प्रयत्न करती है। वह बार-बार गिरती है और बड़ी कठिनाई से दीवार पर चढ़ने में सफल होती है। मकड़ी अपने बनाये तार के सहारे आसानी से ऊपर नीचे आ जा सकती है। मछली पानी की धारा के विरुद्ध लंबी छलाँग लगा लेती है। पक्षी जब चाहे आसानी से उड़कर आकाश में पहुँच जाता है और जब चाहे धरती पर आ जाता है। सहजोबाई समझाती हैं कि शुरू में आत्मा को शरीर के आँखों से ऊपरी भाग में स्थिर करना बहुत कठिन होता है। ध्यान बार-बार ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर दौड़ता है। अभ्यास में उन्नति से यह शब्द की डोरी को पकड़कर मकड़ी की तरह आसानी से ऊपर नीचे आ-जा सकती है।

नट धरती में गड़े बाँस पर मज़बूती से बँधी रस्सी पर चढ़कर आकाश में कई प्रकार की कलाएँ दिखाता है। उसी प्रकार अभ्यास के पक्का हो जाने पर आत्मारूपी नटिनी आसानी से आंतरिक आकाश में चढ़कर मनचाहे करतब करती है। यहाँ 'आकाश' का अर्थ है त्रिकुटी का शिख़र, जिसको संतों ने 'गगन' कहकर पुकारा है। जब आत्मा दूसरे आंतरिक मंडल त्रिकुटी को पार कर लेती है, तो यह मन-इंद्रियों तथा कर्मों के सब आवरणों से मुक्त हो जाती है। **'हंसा सोहं तार कर'** का भाव है कि आत्मा शब्द की डोरी को पकड़कर तीसरे लोक में पहुँच जाती है। वहाँ पहुँचने पर इसे हंस-गति प्राप्त हो जाती है। तीसरे मंडल दसवें द्वार में

पहुँचकर इसके माया तथा संस्कारों के परदे भी उतर जाते हैं। संतों ने इस हंस-गति अर्थात् आत्मा की निर्मल अवस्था को ही आत्मा की पहचान, अपने निज स्वरूप की पहचान आदि की अवस्था कहा है। 'सोहं' का अर्थ है: 'मैं वही हूँ।' उस अवस्था में पहुँचकर आत्मा को ज्ञान हो जाता है कि मेरा असल वह परमात्मा है। दसवें द्वार में हो रही शब्द की ध्वनि को भी संतों ने 'सोहं' की ध्वनि कहा है। इस अवस्था में आत्मा क्षणभर में आंतरिक मंडलों में पहुँच जाती है और आँखें खोलते ही फिर शरीर तथा संसार में आ जाती है। पूर्ण संतों की विहंगम चाल होती है। वे आँखें बंद करते ही प्रभु के दरबार में पहुँच जाते हैं तथा आँखें खोलते ही फिर वापस शरीर और संसार में आ जाते हैं।

अजपा जाप

हक्कारे उठि नाम सूँ, सक्कारे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कहि दीन॥
सब घट अजपा जाप है, हंसा सोहं पुर्ष।
सुरत हिये ठहराय के, सहजो या बिधि निर्ख॥
सब घट ब्यापक राम है, देही नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजो दीपक एक॥[40]

सहजोबाई कहती हैं: मेरे सतगुरु ने उपदेश दिया है कि सुबह सवेरे उठकर नाम के सुमिरन द्वारा प्रभु के आगे सच्चे दिल से पुकार करनी चाहिये तथा अपने ध्यान को इस प्रकार नाम में लीन कर देना चाहिये कि चलते-फिरते, उठते-बैठते लिव नाम से जुड़ी रहे। यही अजपा जाप है जिसका भेद सतगुरु अपने शिष्य को देते हैं। अमीर-ग़रीब, राजा-रंक, पुण्यात्मा और पापी में जो भी अंतर है, शरीर तक ही सीमित होता है। प्रभु के शब्द की ध्वनि और शब्द का प्रकाश प्रत्येक शरीर में समान रूप से समाया हुआ है। शिष्य को चाहिये कि सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंतर में स्थिर करके शब्द के अजपा जाप

से जोड़ दे। तब शब्द की ध्वनि सुरत को चुंबक के समान अपनी ओर खींचेगी। आत्मा उससे दिशा प्राप्त करके शब्द के प्रकाश के सहारे आंतरिक मंडल पार करती हुई, घट-घट में रमे हुए राम अर्थात् परमात्मा के धाम में पहुँच जायेगी।

लगै सुन्न में टकटकी, आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिं करि, सहजो रहै समाय॥
सहज स्वाँस तीरथ बहै, सहजो जो कोइ न्हाय।
पाप पुन्न दोनों छुटैं, हरि पद पहुँचै जाय॥[41]

साधक दृढ़ आसन में अडोल बैठकर ध्यान को आँखों से ऊपर एकाग्र तथा स्थिर करके सुन्न मंडल में पहुँच जाता है। 'सुन्न' से अभिप्राय तीसरे आध्यात्मिक मंडल से है जिसको संतों ने दसवाँ द्वार, अमृतसर, प्रयाग, त्रिवेणी, मानसरोवर, पारब्रह्म आदि कहा है। सुरत-शब्द के अभ्यास से साधक को वह अनुपम अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसमें उसकी आत्मा कई घंटे ही नहीं, बल्कि कई-कई दिन बिना हिले अंदर टिकी रहती है। शरीर मुरदे के समान होता है, परंतु साँस सहज रूप में चलती रहती है। उस अवस्था में आत्मा हर पल दसवें द्वार में नाम के तीर्थ पर स्नान करती है। तब यह पाप और पुण्य से मुक्त होकर प्रभु के चरणकमलों में पहुँच जाती है।

आंतरिक सफ़र की झलक देते हुए सहजोबाई कहती हैं: जब ध्यान छः कमलों या छः चक्रों से ऊपर स्थिर हो जाता है तो आत्मा की शब्द के प्रकाश को देखने की शक्ति निरत जाग उठती है। फिर आत्मा को अंदर की ज्योति के दर्शन होते हैं। 'जब आगे कूँ धाव देख करि जगमग जोती।'[42]—यहाँ बिना बिजली के प्रकाश दिखायी देता है।

'पाँच तत्त दरसायँ और अचरज दरसाई॥'[43]—जब ध्यान आँखों से ऊपर स्थिर हो जाता है, तो सबसे पहले पँचरंगी फुलवाड़ी दिखायी देती है। यह पाँच सूक्ष्म तत्त्वों के सतोगुणी भाव के आश्चर्यजनक

रंग-रूपों वाला आकर्षक प्रसार है। 'तिरदेवा और आठ सिधि देखौ इन्दर भूप।'[44]—उसके आगे ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवताओं के दर्शन होंगे तथा आठों सिद्धियाँ शीश नवाये नज़र आयेंगी। इसके बाद देवराज इंद्र भी दिखाई देंगे।

'हंस हंस जहँ होत है ओअं ओअं होय।'[45]—दूसरे आंतरिक मंडल में ओम्-ओम् की ध्वनि निरंतर गूँजती सुनायी देती है। यहाँ पहुँचकर आत्मा मन के गठबंधन से मुक्त होकर निर्मल हो जाती है।

भया हरि रस पी मतवारा।
आठ पहर झूमत ही बीतै, डार दिया सब भारा॥
इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा।
पीवन लगे सुधारस जब ही, दुर्जन पड़ी बिडारा॥
गंग जमन बिच आसन मार्‌यो, चमक चमक चमकारा।
भँवर गुफा में दृढ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा॥
चित इस्थिर चंचल मन थाका, पाँचौ का बल हारा।
चरनदास किरपा सूँ सहजो, भरम करम हुए छारा॥[46]

सहजोबाई संकेत करती हैं कि जब ध्यान अंदर टिक जाता है तो बायीं ओर की सूक्ष्म नाड़ी इड़ा यानी यमुना, दायीं ओर की सूक्ष्म नाड़ी पिंगला यानी गंगा और बीच की सूक्ष्म नाड़ी सुषुम्ना यानी सरस्वती के संगम पर पहुँचने से नाम का अमृत प्राप्त हो जाता है। नाम का अमृत पीकर मन आनंदित हो जाता है। नाम जीवात्मा के लिए अमृत है, इसे पीने से पाँचों विकारों का नाश हो जाता है। चंचल मन शांत और निश्चल हो जाता है और आत्मा शब्द के प्रकाश को देखती हुई ऊपर चढ़ती हुई भँवरगुफा में पहुँच जाती है। यहाँ के प्रकाश का वर्णन कर पाना असंभव है। सतगुरु की कृपा से इस अवस्था में पहुँचकर हर प्रकार के भ्रमों और कर्मों से छुटकारा हो जाता है।

'जनम मरन मिटि सहजिया उपजै बिनसै नाहिं॥'[47]—इस प्रकार आत्मा सृजन और विनाश, जन्म और मरण के चक्र से सदा के लिए मुक्त हो जाती है और परमपद पाकर सुशोभित होती है यानी प्रभु के चरणों में पहुँचकर प्रभु का रूप धारण कर लेती है।

'हद्द तजि बेहद लागौ।'[48]—त्रिलोकी तक की रचना माया की सीमा में है। शब्द के साथ जुड़कर आत्मा देश-काल की सीमा पार करके उस अनंत-अपार, अगम और अथाह प्रभु के देश में पहुँच जाती है। उस देश का कोई आदि, मध्य और अंत नहीं है। असीम प्रभु की तरह उसका निज धाम भी असीम है, अनंत है।

नाम पारस है

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय॥[49]

पारस एक पत्थर है। इसका गुण है कि यह लोहे को सोना बना देता है, परंतु उससे लाभ वही उठा सकता है जो उसकी क़द्र जानता हो। किसी अनजान के लिए वह केवल पत्थर है। पारमार्थिक साहित्य में एक दृष्टांत है: एक साधु ने किसी व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उसे एक महीने के लिए पारस दे दिया और कहा कि जितना सोना बनाना है, बना ले। एक महीने के बाद मैं पारस वापस ले लूँगा।

जिसे पारस दिया गया था, वह दूसरे दिन बाज़ार में लोहा लेने गया। व्यापारी ने कहा कि आज ही लोहे का मूल्य दोगुना हुआ है। उस व्यक्ति ने सोचा कि जब लोहा सस्ता हो जायेगा, तब ख़रीदूँगा। लोहे का मूल्य कम होने के इंतज़ार में सारा महीना बीत गया। साधु अपना पारस वापस ले गया और वह व्यक्ति कंगाल का कंगाल ही रह गया। यह संत-महात्माओं का पारमार्थिक सत्य को समझाने का एक ढंग है।

सतगुरु सभी शिष्यों को नामरूपी पारस बिना किसी मोल के बख़्शते हैं। कुछ शिष्य केवल इस इंतज़ार में रहते हैं कि पहले जीवन के हालात ठीक हो जायें, फिर नाम का अभ्यास करेंगे। उनकी पूरी ज़िंदगी नाम-सुमिरन के बिना बीत जाती है। परिणाम यह होता है कि शिष्य परमार्थ का धन इकट्ठा किये बिना ख़ाली हाथ इस संसार से चला जाता है, क्योंकि उसने नामरूपी पारस का प्रयोग ही नहीं किया।

दूसरी ओर कुछ शिष्य लगन, दृढ़ता, प्रेम और विश्वास के साथ नाम का अभ्यास करते हैं। पारमार्थिक धन प्राप्त करके उनका कायाकल्प हो जाता है। सतगुरु द्वारा दिये नाम का अंतर्मुख अभ्यास करने से शिष्य प्रभु में समाकर प्रभु का रूप हो जाते हैं।

प्रेम

संत-महात्मा समझाते हैं कि आत्मा और परमात्मा का रिश्ता प्रेम का रिश्ता है। इसलिये प्रभु के साथ मिलाप करने के लिए हृदय में उसके लिये सच्चा प्रेम होना चाहिये। लेकिन वर्तमान अवस्था में प्रभुप्रेम जगत् के मोह में परिवर्तित हो गया है। प्रभु का प्रेम शिथिल हो गया है और संसार का मोह प्रबल हो गया है। जब सौभाग्य से जीव को सतगुरु की शरण प्राप्त हो जाती है, तो उसके हृदय में सतगुरु के प्रति प्रेम जाग्रत हो जाता है।

चरनदास सतगुरु दियो, प्रेम पियाला छान।
सहजो मतवारे भये, तुरिया तत गलतान॥[1]

सतगुरु के प्रेम से आरंभ हुआ प्रेम, सुमिरन के प्रेम द्वारा प्रफुल्लित होकर निराकार प्रभु के प्रेम में पूर्ण हो जाता है। फिर वह प्रेम संपूर्ण रचना के प्रेम तक फैल जाता है, क्योंकि जीव को रचना की प्रत्येक वस्तु में प्रियतम प्रभु ही समाया हुआ दिखाई देता है। यह प्रेम की चरम सीमा है।

प्रेम लटक दुर्लभ महा, पावै गुरु के ध्यान।
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान॥[2]

प्रेम की यह अद्भुत अवस्था सतगुरु के ध्यान द्वारा प्राप्त होती है। जब शिष्य सतगुरु के उपदेश के अनुसार प्रभु के नाम का निरंतर जाप

करता है, तो उसके अंदर शब्द का अजपा जाप प्रकट हो जाता है और प्रेम का चश्मा फूट पड़ता है।

इस अवस्था में रोम-रोम प्रेम के नशे में सराबोर हो जाता है। ध्यान बाहर से पलटकर अंदर स्थिर हो जाता है और समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

प्रेमियों की अवस्था

जब शिष्य प्रेम और विश्वास के साथ सुमिरन करता है, तो उसका ध्यान बाहर से अंदर की ओर सिमटता जाता है। धीरे-धीरे ध्यान अंदर टिक जाता है और अंदर शब्द प्रकट हो जाता है। शब्द प्रभु का रूप है और प्रभु प्रेम का रूप है। शब्द में लीन हुआ जीव प्रभु की तरह ही प्रेमरूप और आनंदरूप हो जाता है।

प्रेम दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर॥[3]

प्रेम दिवाने जो भये, प्रीतम के रँग माहिं।
सहजो सुधि बुधि सब गई, तन की सोधी नाहिं॥[4]

प्रेम दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप॥[5]

प्रेम दिवाने जो भये, कहैं बहकते बैन।
सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहू टपकै नैन॥[6]

प्रेम दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट॥[7]

प्रेम दिवाने जो भये, नेम धरम गयो खोय।
सहजो नर नारी हँसै, वा मन आनँद होय॥[8]

सहजोबाई कहती हैं कि जिनके हृदय में प्रभु का प्रेम हिलोरें लेता है, उनका मन स्वयं ही संसार के मोह से मुक्त हो जाता है। उन्हें प्रभु सदा प्रत्यक्ष दिखाई देता है। उन पर प्रियतम के प्रेम का ऐसा रंग चढ़ जाता है कि संसार तो एक तरफ़, प्रेमी को अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं रहती। प्रेमियों की अवस्था बिलकुल बदल जाती है। वे राजा और रंक के भेदभाव से ऊपर उठ जाते हैं। लोगों को उनकी बातें अटपटी-सी लगती हैं। वे पल भर में प्रभु की याद में रो पड़ते हैं और अगले ही पल हँस पड़ते हैं। वे जाति-पाँति, क़ौमों, मज़हबों और मुल्कों के भेदभाव से भी ऊपर उठ जाते हैं। लोग उनको बावरा कहने लगते हैं। उनके जीवन में बाहरी कर्मकांड कोई मायने नहीं रखते। लोग चाहे उनकी हँसी उड़ायें, परंतु उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं होती, क्योंकि वे तो उस परम आनंद में लीन होते हैं।

नम्रता

सहजोबाई उपदेश देती हैं: परमार्थ में सफलता के लिए नम्रता का बहुत महत्त्व है। सतगुरु के उपदेश पर चलते हुए मन में नम्रता धारण करनी चाहिये। जहाँ नम्रता सुख का साधन है, वहाँ अहंकार परेशानी और दु:ख को न्योता देता है।

धन छोटापन सुख महा, धिरग बड़ाई ख्वार।
सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के बचन सम्हार॥[1]

सहजोबाई ने अपनी बानी में नम्रता को सब गुणों की खान माना है। लोक और परलोक में, स्वार्थ तथा परमार्थ की दृष्टि से नम्रता की अपार महिमा है।

सहजोबाई कई उदाहरणों द्वारा नम्रता का गुणगान करती हैं।

सहजो तारे सब सुखी, गहै चन्द और सूर।
साधू चाहै दीनता, चहै बड़ाई कूर॥[2]

चंद्रमा और सूर्य बड़े हैं पर उनको ग्रहण लगता है। छोटे-छोटे तारों को ग्रहण नहीं लगता। इसलिये साधु नम्रता के इच्छुक होते हैं और मूर्ख मान-बड़ाई के।

अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड़।
सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार॥[3]

शेर अपने बल के अहंकार के कारण जंगलों-उजाड़ों में भटकता है, जबकि नन्ही-सी बकरी को सभी प्रेम करते हैं। इसलिये जिन लोगों में अहंकार होता है, लोग उनसे दूर रहते हैं। जिनके अंदर नम्रता होती है, सारा संसार उनसे प्रेम करता है।

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव॥[4]

सिर, मुख, कान और नाक ऊँचे हैं, लेकिन पूजा हमेशा चरणों की होती है।

नन्ही चींटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेंह।
सहजो कुञ्जर अति बड़ो, सिर में डारै खेह॥[5]

चींटी छोटी है। वह घर में जहाँ चाहे जा सकती है और रस ले सकती है। हाथी आकार में बड़ा होता है, परंतु नहाने के बाद ख़ुद अपनी ही सूँड़ से अपने ऊपर मिट्टी डाल लेता है।

सहजो चन्दा दूज का, दरस करै सब कोय।
नन्हें सूँ दिन दिन बढ़ै, अधिको चाँदन होय॥[6]

दूज का चाँद छोटा होता है। सब लोग उसका दर्शन करते हैं। जब वह छोटे से बड़ा होता जाता है तो उसका प्रकाश दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। उसी प्रकार नम्र व्यक्ति का सब तरफ़ यश होता है और उसके गुण बढ़ते जाते हैं।

बड़ा भये आदर नहीं, सहजो आँखिन देख।
कला सभी घट जायगो, कछू न रहसी रेख॥[7]

जो बड़ा बनता है उसको कहीं आदर नहीं मिलता। अहंकार सब गुणों का नाश कर देता है। जैसे बड़ा होने के बाद चंद्रमा की कला घटते-घटते ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेती है कि एक दिन उसकी कोई रेखा तक नहीं रहती।

सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय।
नारी परदा ना करै, गोदहि गोद खेलाय॥[8]

राजा के महल में किसी युवक का प्रवेश कर पाना कठिन है, परंतु छोटा बच्चा अपनी निश्छलता से राजा के घर पहुँच जाता है। राजमहल की रानियाँ भी उससे परदा नहीं करतीं। वे उसके साथ लाड़-प्यार करती हैं। उसी तरह नम्र व्यक्ति को सब जगह प्रेम और सम्मान मिलता है।

बड़ा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागि है, सहजो मोटी मार॥[9]

अहंकारी व्यक्ति मालिक के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकता। वह जितना बड़ा बनकर दिखाता है उतनी अधिक मार खाता है।

बारे दीवे चाँदना, बड़ा भये अँधियार।
सहजो तृन हलका तिरै, डूबै पत्थर भार॥[10]

'दीया बड़ा हो गया है'—से अभिप्राय है कि दीया बुझ गया है। सहजोबाई कहती हैं कि जब तक दीया जलता रहता है, हर तरफ़ प्रकाश

करता है। जब बढ़ा दिया जाता है तो हर ओर अंधकार हो जाता है। तिनका हल्का होने के कारण तैर जाता है, परंतु पत्थर डूब जाता है।

भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास की, काटै ना तरवार॥[11]

तलवार का वार रुई को नहीं काट सकता। उसी प्रकार नम्र व्यक्ति पर अत्याचारी का वार ख़ाली जाता है।

साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुञ्जर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक॥[12]

राजा-महाराजाओं, सेठ-साहूकारों को सदा अपने राजपाट या धन-दौलत के हाथ से निकल जाने का भय रहता है। निर्धन को इस तरह का कोई भय नहीं होता। हाथी के पाँवों में बेड़ियाँ डाली जाती हैं, जबकि चींटी निर्भय होकर जहाँ चाहे आ-जा सकती है।

चरनदास सतगुरु कही, सहजो कूँ यह चाल।
सकौ तो छोटा हूजिये, छूटै सब जंजाल॥[13]

ऊँचे उज्जल भाग सूँ, आय मिले गुरुदेव।
प्रेम दिया नन्हा किया, पूरन पायो भेव॥[14]

सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदान।
नख सिख आई दीनता, भजे बड़ाई मान॥[15]

सहजोबाई कहती हैं कि सतगुरु जीव के कल्याण के लिये महत्त्वपूर्ण उपदेश देते हैं कि विनम्र बनकर रहो। इससे दु:ख-क्लेश मिट जायेंगे और

सुख में वृद्धि होगी। ऐसे हितैषी सतगुरु से मिलाप सौभाग्य से ही प्राप्त होता है। उन की दया से मन में प्रेम और नम्रता का निवास हो जाता है और अहंकार का नाश हो जाता है।

सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदैन।
गये कुलच्छन देह सूँ, सुलछन पायो चैन॥[16]

औगुन थे सो सब गये, राज करैं उनतीस।
प्रेम झिला प्रीतम मिला, सहजो वारा सीस॥[17]

विनम्रता का गुण विषय-विकारों और सब अवगुणों का नाश कर देता है। हृदय में शुभ गुण बस जाते हैं। ऐसी अवस्था में 'उनतीस' भाव तीन गुण, पच्चीस प्रकृतियाँ और मन वश में आ जाते हैं और प्रभुभक्ति विकसित हो जाती है। सत्य का भेद प्राप्त हो जाता है। प्रेम में सराबोर सहजोबाई अपने प्रभु प्रीतम पर बलिहारी जाती हैं।

सहजोबाई ने अपने आपको अबला, निर्बल, मूर्ख, अज्ञानी, पापों की पुतली आदि कहा है। नम्रता का ऐसा भाव उनकी महानता का शिखर है। नम्रता महात्मा की पहचान होती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह को छोड़ देना आसान है, परंतु अहंकार का त्याग करके नम्र हो जाना कठिन है। महात्मा समझाते हैं कि नम्रता का श्रेष्ठ गुण, सब गुणों के बाद उत्पन्न होता है। जब सामने बड़ा व्यक्ति खड़ा हो तो शीश स्वयं उसके आगे झुक जाता है। संतों को प्रत्येक जीव में प्रभु का ही रूप दिखायी देता है। इसलिये प्रभु के भक्त नम्रता के पुंज होते हैं।

नवधा भक्ति

कुछ संत-महात्माओं ने प्रभुभक्ति के नौ अंग माने हैं। भले ही अलग-अलग महात्माओं द्वारा बतायी गयी नवधा भक्ति के नौ अंगों के वर्णन में कुछ विभिन्नता दिखायी देती है, परंतु मूल रूप में सभी महापुरुषों ने इन नौ अंगों द्वारा प्रभु मिलाप के इच्छुक के लिये भक्ति के विभिन्न अंगों का चित्रण किया है। सहजोबाई ने भी नवधा भक्ति का स्वरूप सरल ढंग से प्रस्तुत किया है:

सो बसंत नहिं बार बार। तैं पाई मानुष देह सार॥
यह औसर बिरथा न खोव। भक्ति बीज हिये धरती बोव॥
सतसंगत को सींच नीर। सतगुरु जी सों करौ सीर॥
नीकी बार बिचार देव। परन राख या कूँ जु सेव॥
रखवारी कर हेत हेत। जब तेरी होवै जैत जैत॥
खोट कपट पंछी उड़ाव। मोह प्यास सबही जलाव॥
संभलै बाड़ी नऊ अंग। प्रेम फूल फूलै रँग रंग॥
पुहुप गूँध माला बनाव। आदि पुरुष कूँ जा चढ़ाव॥
तौ सहजो बाई चरनदास। तेरे मन की पुरवैं सकल आस॥[1]

सहजोबाई नवधा भक्ति का उपदेश देती हैं: प्यारी जीवात्मा! मनुष्य-जन्म बसंत के सुहावने मौसम के समान है। यह अनमोल अवसर बार-बार नहीं मिलता। इसको व्यर्थ न गँवा। हृदयरूपी धरती में भक्ति का बीज बोकर,

सत्संगरूपी जल से इसकी सिंचाई कर। बार-बार प्रभु का सुमिरन और ध्यान कर, पूर्ण दृढ़ता से इस भक्ति में लग जा। प्रेम और विश्वास के साथ खेत की रक्षा कर। इस तरह फसल पककर घर आ जायेगी और तेरी हर तरफ़ जय-जयकार होगी। कपट के पक्षियों को उड़ा दे, ताकि वे तेरी फसल बरबाद न कर पायें। मोह-ममता और आशा-तृष्णा को जलाकर राख कर दे। नवधा भक्ति द्वारा हृदय की धरती में प्रेम के रंग-बिरंगे फूल खिलेंगे। उनका हार बनाकर आदि पुरुष के गले में डाल दे, ताकि तेरी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायें।

सहजोबाई ने नवधा भक्ति में दृढ़ता प्राप्त करने में सहायक गुणों का भी वर्णन किया है:

आतम पूजा अधिक जान। सकल सिरोमन याहि मान॥
बिस्तारो हित भवन माहिं। भरम दृष्टि जहँ आवै नाहिं॥
हिरदा कोमल ठौर लिया। कर बिचार जहँ धूप दिया॥
या सेवा का दया मूल। समता चंदन छिमा फूल॥
मीठे बचन सोइ बालभोग। निंदा झूठ तजो अजोग॥
घंटा अनहद सुरत लाव। घट घट देखै एक भाव॥
करौ सुखी सुख आप लेव। इस पूजा सों सुखी देव॥
चरनदास गुरु दई मोहिं। हंस हंस जहँ जाप होहि॥
इन्द्री मन बुध तहँ लगाव। कर सहजो बाई याको चाव॥[2]

सहजोबाई ने बहिर्मुखी परंपरागत रीति रिवाजों और कर्मकांड संबंधी पूजा के बजाय अंतर्मुखी साधना में लगने का उपदेश दिया है।

आप कहती हैं: प्यारी जीवात्मा! हर तरह की बहिर्मुखी पूजा से अपना ध्यान हटाकर, अंतर्मुखी भक्ति में लग जा। तू बाहरी जगत् का मोह त्याग और आंतरिक संसार से प्रेम बढ़ा। बाहरी संसार केवल भ्रम है, जबकि आंतरिक जगत् में भ्रम का दख़ल नहीं है। आंतरिक भक्ति के

लिए सबसे पहले हृदय में कोमलता धारण कर। मन में विचार की धूपबत्ती जला। इस भक्ति का आधार दया भाव है। इसमें क्षमा फूलों के समान और समदृष्टि चंदन के तुल्य है। मीठे वचन भगवान् को लगाये जानेवाले भोग हैं। इस भक्ति में पूर्णता प्राप्त करने के लिए झूठ और परायी निंदा का त्याग कर देना चाहिये। जब साधक अंतर में अनहद शब्द की घंटे के समान गूँज रही धुन में अपनी सुरत को लीन कर देता है, फिर उसे सब में प्रभु का ही प्रकाश दिखायी देने लगता है। ऐसी भक्ति से भक्त को सुख मिलता है, जगत् सुखी होता है और भगवान् भी प्रसन्न होते हैं। सतगुरु ने समझाया है कि मन, बुद्धि और इंद्रियों को एकसुर करके प्रेमपूर्वक प्रभु के नाम का सुमिरन करना चाहिये।

सहजोबाई के सतगुरु संत चरनदास जी ने भी अपने ढंग से नवधा भक्ति का उपदेश दिया है। आप कहते हैं:

नवधा भक्ति सँभारि अंग नौ जानि ले।
सर्वन चितवन और कीर्तन मानि ले॥
सुमिरन बंदन ध्यान और पूजा करो।
प्रभु सूँ प्रीति लगाय सुरति चरनन धरो॥
होकरि दासहिं भाव साध संगति रलो।
भक्तन की करि सेव यही मति है भलो॥
आपा अर्पन देइ धीर्ज दृढ़ता गहो।
छिमा सील संतोष दया धारे रहो॥
यह जो मैंने कहा बेद का मूल है।
जोग ज्ञान बैराग सबन का फूल है॥
प्रेमी भक्त के ताप पात तीनौं नसैं।
अर्थ धर्म काम मोछ सकल ता में बसैं॥
जो राखै मन माहिं बिबेक बिचार कूँ।
पावै पद निर्बान बचै जग भार सूँ॥

कहैं गुरू सुकदेव मया के भाव सूँ।
चरनहि दासा होय सुनो बहु चाव सूँ॥[3]

संत चरनदास जी फ़रमाते हैं: भक्ति के नौ अंगों के बारे में मेरे उपदेश को ध्यानपूर्वक सुनो और इसको अपने मन में दृढ़ता से बसा लो। आप कहते हैं कि प्रभु के नाम का सुमिरन और ध्यान ही सच्ची पूजा है। यह पूजा गुरु के चरणों में ध्यान लगाकर प्रेम भाव के साथ करनी चाहिये।

साधक को विनम्र होकर संत-महात्माओं की संगति करनी चाहिये और दृढ़ता से उनके उपदेश पर चलना चाहिये। अहंकार त्यागकर अपने आपको सतगुरु के चरणों में समर्पित करके, धैर्य और दृढ़ता से उनकी शरण में रहना चाहिये। विकारों पर नियंत्रण करके शील, संतोष, क्षमा और दया के गुण धारण करने चाहिएँ।

संत चरनदास जी कहते हैं कि नवधा भक्ति वेदों की शिक्षा का सार है। योग, ज्ञान और वैराग्य आदि सबका फल इसी में सम्मिलित है। जो भक्त प्रेमपूर्वक इसे हृदय से अपनाता है, उसके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों ताप तथा संचित, प्रारब्ध और क्रियमान तीनों प्रकार के कर्म नष्ट हो जाते हैं। उसको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। उसका जीवन सफल हो जाता है।

संत चरनदास जी कहते हैं कि मेरे सतगुरु सुखदेव जी ने मुझ पर अपार दया करके मुझे यही उपदेश दिया है कि जो भी नवधा भक्ति के सब अंगों पर प्रेम तथा विश्वास से अमल करता है, उसका आवागमन का चक्कर समाप्त हो जाता है और वह मुक्त होकर निर्वाणपद प्राप्त कर लेता है।

विनती और प्रार्थना

आत्मा प्रभु की अंश है। जब यह पहले संसार में आयी, तो यह निर्मल और निष्कलंक थी। इस कर्म प्रधान संसार में इस पर धीरे-धीरे कर्मों की मैल चढ़ती गयी और यह निज घर के परम आनंद को भूल गयी। अपनी वर्तमान दीनहीन अवस्था में बेचारा जीव क्या करे? इसके बारे में सहजोबाई ने जीव का मार्गदर्शन किया है कि जीव तो ग़लतियों का पुतला है, लेकिन पिता परमेश्वर दयालु और बख़्शिद है। जिस प्रकार माता-पिता बच्चों के अवगुणों और कमज़ोरियों की ओर ध्यान नहीं देते, इसी प्रकार सर्वसमर्थ प्रभु जीव की सब भूलें माफ़ कर, उन्हें गले लगाने को तैयार है। लेकिन हमें अन्य सभी सहारे त्यागकर सच्चे दिल से उसे पुकार कर उसकी दया और रहमत की भीख माँगनी है।

विनती के दो पहलू हैं। पहला यह कि मनुष्य अपने किसी गुण का मान या अहंकार कभी न करे, क्योंकि गुण जीवन को अच्छा तो बनाते हैं, परंतु प्रभु के साथ मिलाप सतगुरु की दया से ही होता है। विनती का दूसरा पहलू यह है कि मनुष्य विवश है, निर्बल है। यह प्रभु के हुक्म से संसार में आया है। अपनी शक्ति और ज्ञान के आधार पर यह कभी परमात्मा के पास वापस नहीं पहुँच सकता। सहजोबाई ने प्रभु के आगे सच्चे दिल से विनती करने की विधि बतायी है।

तुम गुनवंत मैं औगुन भारी।
तुम्हरी ओट खोट बहु कीन्हे, पतित उधारन लाल बिहारी॥

खान पान बोलत अरु डोलत, पाप करत है देह हमारी।
कर्म बिचारौ तौ नहिं छूटौं, जो छूटौं तौ दया तुम्हारी॥
मैं अधीन माया बस हो करि, तुम सुधीन माया सूँ न्यारे।
मैं अनाथ तुम नाथ गुसाईं, सब जीवन के प्रान पियारे॥
भौसागर में डर लागत मोहिं, तारौ बेगहि पार उतारी।
चरनदास गुरु किरपा सेती, सहजो पाई सरन तिहारी॥[1]

सहजोबाई माया के जाल में फँसे निर्बल अज्ञानी जीवों की ओर से विनती करती हैं: हे प्रभु! आप गुणों के भंडार हैं, हम अवगुणों की खान हैं। हम अनगिनत पापों से भरे हुए हैं, आप पापियों का उद्धार करनेवाले हैं। हम साँस-साँस पापों का बोझ बढ़ाते जा रहे हैं। यदि आप हमारे कर्मों को देखेंगे, तो हम कभी आवागमन के जाल से नहीं छूट पायेंगे। केवल आपकी दया-मेहर से ही हम मुक्त हो पाएँगे। हम अज्ञानी जीव माया की दलदल में लिप्त हैं। आप माया से निर्लेप हैं। आप हमें इस दलदल से बाहर निकालने में समर्थ हैं। आप बेसहारों के सहारा हैं, अनाथों के नाथ हैं। हम सतगुरु की कृपा से आपकी शरण में आ गये हैं। इस विकराल भवसागर को देखकर डर लगता है। आप कृपा करें और हमारा उद्धार कर दें।

अब तुम अपनी ओर निहारो।
हमरे औगुन पै नहिं जाओ, तुमहीं अपना बिरद सम्हारो॥
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई।
पतित-उधारन नाम तुम्हारो, यह सुनके मन दृढ़ता आई॥
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतरजामी।
मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हो किरपाल दयालहि स्वामी॥
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाहीं।
द्वार तिहारे आय परी हौं, पौरुष गुन मो में कछु नाहीं॥
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ।
लगन लगी अरु प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ कहौ कित जाऊँ॥[2]

हे दयालु प्रभु! निर्बल, अनाथ पापियों पर दया करना आपका बिरद है, धर्म और स्वभाव है। आप हमारे अवगुण अनदेखे करके हम पर दया-मेहर करें। वेद-पुराण भी साक्षी हैं कि आप सदा पापियों का उद्धार करते रहे हैं। यह सुनकर हमारे मन में भी यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि आप हमें भी बख़्श देंगे। हम अज्ञानी हैं, आप अंतर्यामी हैं। अब हम आपकी शरण में आ गये हैं। दोनों हाथ जोड़कर आपसे विनती करते हैं कि आप कृपा करके हमें अपना लें। हममें न कोई गुण है, न कोई सामर्थ्य। हम निर्बल और निर्गुण हैं। अब आपके द्वार पर आये हैं, शरणागत की लाज रख लें। आपके बिना जीना दुश्वार हो गया है। आपके सिवाय हमारा कोई सहारा नहीं। आपको छोड़कर किस के द्वार पर जायें? अब आप कृपा करें और अपने दर्शनों की दात बख़्शकर निहाल कर दें।

हम बालक तुम माय हमारी। पल पल मोहिं करो रखवारी॥
निस दिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो॥
बिषै ओर जान नहिं देवो। ढुर ढुर जाउँ तो गहि गहि लेवो॥
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ। बुरी भली को नहिं पहिचानूँ॥
जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेव। गुर ह्वै ध्यान खेलौना दीन्हेव॥
तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ। नाम तुम्हारो इमृत पीऊँ॥
दिष्टि तिहारी ऊपर मेरे। सदा रहूँ मैं सरनै तेरे॥
मारौ झिड़कौ तौ नहिं जाऊँ। सरक सरक तुमहीं पै आऊँ॥
चरनदास है सहजो दासी। हो रिच्छक पूरन अबिनासी॥[3]

हे प्रभु! हम बालक हैं, आप हमारी माता हो। हमें सदा अपनी गोद अर्थात् संरक्षण में रखें और अपने वचन सुनाते रहें। आप हमें विषय-विकारों की तरफ़ न जाने दें। यदि अज्ञानतावश चले भी जायें तो हमारी रक्षा कर वापस अपने चरणों की शरण बख़्श दें। हम अज्ञानी हैं, हमें अपने भले-बुरे की पहचान नहीं है। लेकिन अच्छे-बुरे हम जैसे भी हैं, आपके हैं। हे सतगुरु! आपने अपनी शरण में लेने के लिये हमें चुना और

ध्यान लगाने के लिये गुरु-मंत्ररूपी खिलौना बख़्श दिया, अब तो हम आपकी शरण और दया के सहारे ही जीवित रह सकते हैं और नाम का अमृत पी सकते हैं। हम पर आपकी दया-मेहर की दृष्टि सदा बनी रहे। हे सतगुरु! आप चाहे हमारे अवगुणों के कारण हमें झिड़क लें, मार लें, परंतु हम आपका दामन छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। हे पूर्ण अविनाशी रक्षक! हम तो आपके चरणों के दास हैं।

करी मोहिं दास जो आपनी जानि कै, राखियो दृष्टि तुम सदा नीकी।
और कोइ आसरो धरूँ ना जगत में, मानियो साच मैं कहूँ ठीकी॥
तुही मात औ पिता बंधू तुही, तुही कुल नात है गोत मेरा।
तुही धन धाम औ जीव इस देह का, तो बिना और दूजा न हेरा॥
जाप तेरा करूँ ध्यान हिरदे धरूँ, समुझि कै ज्ञान तो कूँ पिछानूँ।
सरन तेरी लई टेक ऐसी गही, तुम बिना आन कूँ नाहिं जानूँ॥
गही जब बाँह बिख्यात जग में भई, सकल लज्जा तुम्हैं है गोसाईं।
कलू के काल में महा भयमान हूँ, चरन हूँ कवल की राखि छाईं॥
कहत सहजो दोऊ हाथ को जोरि कै, सीस नीचा किये दीन धारे।
चरनदास गुरु अरज सुनि लीजिये, तुही है इष्ट आसा हमारे॥[4]

सहजोबाई विनती करती हैं: हे हरि! मैं आपकी हूँ, मुझे अपना समझकर मुझ पर सदा अपनी दयादृष्टि बनाये रखें। मेरा कहा सच मानें कि आपके अलावा मेरा कोई अन्य सहारा नहीं है। मेरे माता-पिता, कुल-परिवार, धर्म-जाति, सब आप ही हैं, आप ही मेरा जीवन हैं। सब सहारे छोड़कर मैं आपकी शरण में आ गयी हूँ। सदा आपके नाम के सुमिरन और ध्यान में लीन रहती हूँ। आपके दिये ज्ञान से ही मेरी तुच्छ बुद्धि को आपकी कुछ पहचान हुई है। जब से आपने मेरी बाँह पकड़ी है, सारे संसार को पता चल गया है कि मैं पूर्ण रूप से आपकी हो गयी हूँ। हे मेरे मालिक! मेरी लाज आपके हाथ में है। मैं इस कलियुग में

भयभीत हूँ। मुझे अपने चरणकमलों का सहारा बख़्शें। दोनों हाथ जोड़कर आपके चरणों में शीश झुकाकर मैं विनती करती हूँ: आप ही मेरे ठाकुर हैं, आप ही मेरा सच्चा सहारा हैं। मेरी विनती स्वीकार करें और कृपया मुझे अपना बना लें।

विनती का फल

मेरे इक सिर गोपाल और नहीं को भाई॥ टेक॥
आइ बैस हिये माहिं, और दूजा ध्यान नाहिं।
मेरे तो सर्बस उन, औ हिताई वोई॥
जाति हूँ की कान तजी, लोक हूँ की लाज भजी।
दोनों कुल माहिं बजी, कहा करै सोई॥
उघरी है प्रीत मेरी, निहचै हुई वा की चेरी।
पहिरि हिये प्रेम बेरी, टूटै नहीं जोई॥
मैं जो चरनदास भई, गति मति सब खोइ दई।
सहजो बाई नहीं रही, उठि गई दोई॥[5]

जीव द्वारा सच्चे दिल से की गयी विनती प्रभु के दरबार में स्वीकार हो जाती है, फिर प्रभु जीव पर ऐसी कृपा करता है कि उसमें प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम और विश्वास उत्पन्न हो जाता है। सहजोबाई कहती हैं: मुझे केवल प्रभु का सहारा है। मेरे हृदय में केवल वही समाया हुआ है। मेरे ध्यान में अन्य कोई नहीं। मेरा सगा-संबंधी और हितैषी वही है। वह मेरा सर्वस्व है। लोक और परलोक में इस बात की चर्चा है कि मैं जाति-पाँति और लोकलाज त्यागकर हरि की दासी बन गयी हूँ। मेरा हृदय उसकी प्रेमरूपी अटूट ज़ंजीर से बँध गया है। द्वैत की भावना दूर हो गयी है। अब सहजोबाई के रूप में मेरा अलग अस्तित्व नहीं रहा। मैं अपने सतगुरु चरनदास जी में समाकर उनका ही रूप हो गयी हूँ।

सोलह तिथियाँ

सहजोबाई ने चंद्रमा की रोज़ बदलती अवस्था के अनुसार सोलह तिथियों को आधार बनाकर बहुत-से पारमार्थिक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। अमावस से पूर्णिमा तक सोलह तिथियों के माध्यम से उन्होंने जीव को सोलह पारमार्थिक पहलुओं के प्रति जागरूक किया है। जिस प्रकार अमावस में चंद्रमा बिलकुल अंधकार में डूब जाता है, फिर वह दिन-प्रतिदिन सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता हुआ पूर्णिमा को पूरी तरह प्रकाशमय हो जाता है, उसी तरह अज्ञान के अंधकार में डूबा जीव सतगुरु की शरण में ज्ञान, भक्ति और प्रभु मिलाप के मार्ग में उन्नति करता हुआ एक दिन मनुष्य-जन्म के उद्देश्य को पाने में सफल हो जाता है। उसका अज्ञानता का अँधेरा नष्ट हो जाता है और वह अंतर में प्रकट प्रभु के सहज प्रकाश में लीन होकर ज्योतिस्वरूप हो जाता है। सहजोबाई ने तिथियों का वर्णन या तो तिथि के पहले शब्द से या पहले अक्षर से शुरू किया है ताकि पाठक को उपदेश आसानी से याद रहे।

सहजोबाई ने सोलह तिथियों के आधार पर परमार्थ का उपदेश देने से पूर्व अपने सतगुरु चरनदास जी की वंदना की है तथा सुखदेव जी को भी प्रणाम किया है, जो संत चरनदास के सतगुरु थे।

परनाम करूँ सुकदेव जी, तुम पर वारूँ प्रान।
सोलह तिथि अब कहत हूँ, इनका दीजै ज्ञान।
चरनदास के चरन कूँ, निस दिन राखूँ ध्यान।
ज्ञान भक्ति और जोग कूँ, तिथि में करूँ बखान॥[1]

मावस

ममा ररा दो अंक कूँ राखौ हिरदे माहिं।
धर्मराय जाँचै नहीं लेखा माँगै नाहिं॥
लेखा माँगै नाहिं जाय नहिं जमपुर बंधा।
ऐसे निर्मल नाम को बिसरै सो अंधा॥
टीका चारो बेद की महिमा कही न जाय।
औसर बीत्यौ जात है सहजो सुमिर अघाय॥[2]

राम शब्द र तथा म के मेल से बना है। अमावस की तिथि इस बात का प्रतीक है कि जीव पूरी तरह अज्ञानता के अँधेरे में डूबा हुआ है। उसके बचाव के लिये सहजोबाई ने उपदेश दिया है कि मनुष्य के हृदय में राम अर्थात् परमात्मा की याद सदैव बनी रहनी चाहिये। इस पंक्ति की एक व्याख्या यह भी की जा सकती है कि राम तथा मृत्यु को कभी विसारना नहीं चाहिये। प्रभुभक्ति के फलस्वरूप धर्मराज कर्मों का हिसाब नहीं माँग सकता और दंड भी नहीं दे सकता। जो व्यक्ति प्रभु के नाम को भुला देता है, वह अंधे के समान है, अज्ञानी है। चारों वेदों के उपदेश का सार भी यही है कि प्रभु के नाम का सुमिरन कभी नहीं भुलाना चाहिये। समय रहते नाम का निरंतर सुमिरन करना चाहिये। इससे मन की सब तृष्णाएँ शांत हो जाती हैं।

पड़िवा

पानी का सा बुलबुला यह तन ऐसा होय।
पीव मिलन की ठानिये रहिये ना पड़ि सोय॥
रहिये ना पड़ि सोय बहुर नहिं मनुखा देही।
आपन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही॥

हरि कूँ भूले जो फिरैं सहजो जीवन छार।
सुखिया जब ही होयगो सुमिरैगो करतार॥[3]

पहली तिथि को चंद्रमा पर प्रकाश की एक रेखा उभरती है और शीघ्र ही लुप्त हो जाती है। पहली तिथि यह संकेत करती है कि जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। मानव-जन्म का अमूल्य अवसर बार-बार नहीं मिलता। किसी प्रभुभक्त की सहायता से अंतर में प्रभु की खोज करनी चाहिये। ग़फ़लत और अज्ञान मनुष्य के सबसे बड़े दुश्मन हैं। जो अज्ञानी मनुष्य-जन्म पाकर प्रभु को भूल जाते हैं, वे सदा दु:खों की चक्की में पिसते रहते हैं। सच्चा सुख केवल प्रभु के नाम का सुमिरन करने से प्राप्त होता है।

दूज

दोयज धंधा जगत का लागि रहै दिन रैन।
कुटुँब महा दुख देत है कैसे पावै चैन॥
कैसे पावै चैन बिना साधू की संगत।
दुनिया रंग पतंग मजीठी गुरु की रंगत॥
जन्म मरन ता सूँ छुटै सहजो दरसै राम।
चौरासी के दुख मिटैं पावै निज पुर धाम॥[4]

दूज की तिथि द्वारा उपदेश दिया गया है कि जो व्यक्ति प्रभुभक्ति के बजाय दूजे सांसारिक धंधों और परिवार को सुख का साधन समझकर दिन-रात इनमें लिप्त रहता है, उसको कभी सच्ची शांति प्राप्त नहीं हो सकती। सच्चा सुख साधु की संगति और सतगुरु के प्रेम द्वारा प्राप्त होता है। दुनिया का रंग झूठा और कच्चा है, जबकि सतगुरु की संगति का रंग

सच्चा और पक्का है। सतगुरु के उपदेश पर चलकर जीव परमात्मा के साथ मिलाप कर लेता है। इसके चौरासी के बंधन टूट जाते हैं और वह निज धाम वापस पहुँचकर सच्चा सुख प्राप्त कर लेता है।

तीज

तीज तनिक सुख कारने बहुत फसायो जीव।
लालच लगि ऐसो गिरै जैसे मक्खी घीव॥
जैसे मक्खी घीव डूब करि निकसै नाहीं।
ऐसे यह नर बूड़ि रहै कुनबे के माहीं॥
मनुखा देही पाय कै सहजो डारी खोय।
जमपुर बाँधे वे चले चौरासी दुख होय॥[5]

तीज से भाव तीज की ख़ुशी का त्यौहार भी लिया जा सकता है। काम और क्रोध के बाद लोभ तीसरा विकार है। तीज की तिथि इस विकार को छोड़ने का संदेश देती है। जिस प्रकार घी के लोभ में मक्खी उसमें फँसकर अपनी जान गँवा देती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव इंद्रियों के क्षणिक भोगों और परिवार के मोह में फँसकर अपना अमूल्य जन्म बरबाद कर देता है और सदैव जन्म-मरण के दु:ख सहता रहता है।

चौथ

चौथ चहूँ दिस तिमिर है महा घोर भयमान।
मूरख जन सोवत तहाँ मिथ्या ते अज्ञान॥
मिथ्या ते अज्ञान सत्य कूँ जानत नाहीं।

बन बन ढूँढ़त फिरत राम अपने ही माहीं॥
ज्यों मिंहदी में रंग है लकड़ी मध्य हु तास।
सहजो काया खोजि ले काहे रहत उदास॥[6]

चौथी तिथि चारों दिशाओं में फैले अंधकार की भयानकता का संकेत करती है। संसार में हर तरफ़ अज्ञानता का भयंकर अंधकार छाया हुआ है। अज्ञानी जीव झूठे संसार को सत्य समझने के भ्रम का शिकार है और अज्ञानता की नींद में सो रहा है। वैसे तो प्रभु की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता, यदि जाता भी है तो अज्ञानवश लोग उसकी तलाश में बाहर ही भटकते हैं। वे यह समझने का प्रयत्न ही नहीं करते कि अंदर बैठे प्रभु के साथ अपने अंदर ही मिलाप किया जा सकता है। जिस प्रकार मेहँदी में रंग होता है और लकड़ी में अग्नि होती है, परंतु विशेष युक्ति से प्रकट होती है, उसी प्रकार सही युक्ति द्वारा प्रभु की तलाश अपने अंदर ही करनी चाहिये। इस कार्य में ग़फ़लत नहीं करनी चाहिये।

पाँचै

पाँचौ इन्द्री बस करौ मन जीतन की ठान।
पवन रोक अनहद लगौ पावौ पद निर्बान॥
पावौ पद निर्बान करौ तुम ऐसी करनी।
आसन संजम साध बन्ध लागै जब धरनी॥
चित मन बुधि हंकार कूँ करौ इकट्ठे आन।
सहजो निज मन होय जब निस्चल लागै ध्यान॥[7]

पाँचवीं तिथि पाँचों इंद्रियों को वश में करने का संदेश देती है, क्योंकि मन पर विजय पाने के लिये इन पर नियंत्रण रखना ज़रूरी है। संयम होने पर

मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार सभी की हस्ती मिट जाती है। ऐसी अवस्था में जब मन निश्चल हो जाता है, तब जीव समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है और उसे निर्वाण यानी मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

छट्ट

छहूँ कँवल कूँ देख करि सतवें में घर छाव।
रसना उलटि लगाव करि जब आगे कूँ धाव॥
जब आगे कूँ धाव देख करि जगमग जोती।
बिन दामिनि चमकार सीप बिन उपजै मोती॥
हंस हंस जहँ होत है ओअं ओअं होय।
चरनदास यों कहत हैं सहजो सुरति समोय॥[8]

सहजोबाई ने छठी तिथि के माध्यम से मनुष्य के आंतरिक छ: कमलों अर्थात् छ: चक्रों की तरफ़ इशारा किया है। सहजोबाई का उपदेश है कि अंतर्मुख अभ्यास से छ: चक्रों से निकलकर जब अंतर में ध्यान स्थिर हो जायेगा, तब दिव्य ज्योति के दर्शन होंगे और आत्मा हंस रूप यानी निर्मल स्वरूप प्राप्त कर लेगी और परमात्मा में समाने के योग्य बन जायेगी।

सातैं

सतसंगति ही कीजिये सत ही कथिये ज्ञान।
सत ही मुख सूँ बोलिए सत ही कीजै ध्यान॥
सत ही कीजै ध्यान हद्द तजि बेहद लागौ।

तीन अवस्था छोड़ि जाय तुरिया सूँ पागौ॥
निराकार निर्गुन तहाँ इकरस चेतन रूप।
रात दिना सहजो नहीं नहीं छाँह नहिं धूप॥[9]

सातवीं तिथि के माध्यम से सहजोबाई सत्संगति और सच्चे ज्ञान का उपदेश देती हैं, क्योंकि अंतर्मुख होकर सत्यस्वरूप प्रभु का ध्यान करने से जीव जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं को छोड़कर तुरीय अर्थात् चौथी अवस्था में पहुँच जाता है। फिर सतलोक में पहुँचकर निर्गुण–निराकार का रूप हो जाता है। वहाँ न दिन है न रात, न धूप है न छाँव अर्थात् न दु:ख और न सुख है। वहाँ जीव अद्वैत की अवस्था में रहता है।

आठैं

आठन कूँ जानै नहीं दस कूँ नाहीं भेद।
चौबीसो समझै नहीं कैसे छूटै खेद॥
कैसे छूटै खेद पंच कूँ जीतै नाहीं।
और पचीसौं संग रहै उनके ही माहीं॥
दोय सदा लागी रहै चौरासी के फेर।
चरनदास यों कहत हैं सहजो आपा हेर॥[10]

आठवीं तिथि को आधार बनाकर सहजोबाई ने योग के आठ अंगों की ओर संकेत किया है। जो इन आठ अंगों को नहीं जानता, वह जीवन शैली को पवित्र बनाने वाले पाँच यम और पाँच नियम, इन दसों के रहस्य को भी नहीं समझ पाता। वह प्रकृति के चौबीस अंगों को भी नहीं समझ पाता, पाँच विकारों को भी नहीं जीत सकता। पाँच तत्त्वों की पच्चीस

प्रकृतियाँ भी जीव के संग लगी रहती हैं। द्वैत की भावना प्रबल होने के कारण वह सदा चौरासी के फेर में रहता है और इसे आत्मिक स्वरूप की पहचान नहीं हो पाती।

नौमी

निंदा हिंसा त्याग करि तामस कूँ दे पीठ।
चित कूँ अस्थिर कीजिये नासा आगे दीठ॥
नासा आगे दीठ जहाँ कछु देखौ भाई।
पाँच तत्त दरसायँ और अचरज दरसाई॥
तिरदेवा और आठ सिधि देखौ इन्दर भूप।
चरनदास कहैं सहजिया साधन अधिक अनूप॥[11]

नवमी तिथि द्वारा सहजोबाई ने संदेश दिया है कि जीव को निंदा, हिंसा आदि का त्याग कर देना चाहिये और ध्यान को शरीर के नौ द्वारों से समेटकर नाक के ऊपरी भाग पर केंद्रित करते हुए दोनों भृकुटियों के बीच में स्थिर करना चाहिये। अंतर में ध्यान केंद्रित होने पर जीव को पाँच तत्त्वों के सूक्ष्म रूप, तीनों प्रमुख देव, आठ सिद्धियाँ और देवराज इन्द्र भी दिखाई देंगे, जिन्हें देखकर अचरज होता है।

दसमी

दसो दिसा भर पूर है ता में ये सब पिंड।
ज्यों सरवर में बुदबुदे ब्रह्म बीच ब्रह्मंड॥
ब्रह्म बीच ब्रह्मंड तासु को वार न पारा।

ऐसो तत्त अगाध नेत कहि निगम पुकारा॥
चरनदास कहैं सहजिया गुरु से लेवौ ज्ञान।
नैना होहिं अनन्त ही जब यह पावै जान॥[12]

दसवीं तिथि इस अटल सत्य को प्रकट करती है कि वह परमात्मा दसों दिशाओं में कण–कण में समाया हुआ है। जैसे सरोवर में बुलबुले उत्पन्न होते हैं और उसी में समा जाते है, वैसे ही उस अनंत प्रभु से अनेक ब्रह्मांड प्रकट होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। वेदों ने भी 'नेति–नेति' कहकर उसकी महिमा की है। प्रभु अगम, अगाध और अथाह परमतत्त्व है।

सहजोबाई कहती हैं: प्रभु के साथ मिलाप के साधन और मार्ग का ज्ञान सतगुरु से प्राप्त होता है। जब शिष्य सतगुरु की समझायी युक्ति के अनुसार शिवनेत्र खोलने में सफल हो जाता है, तब उसको प्रभु के दर्शन हो जाते हैं।

एकादसी

ग्यारह गति जो चहत हौ तजौ जगत की आस।
कलह कल्पना छाँड़ि के आतम में करि बास॥
आतम में करि बास खैंच इन्द्री दस लावौ।
मन इस्थिर जब होय सुरति और निरति मिलावौ॥
ध्याता थाके ध्यान में ध्यान ध्येय के माहिं।
जनम मरन मिटि सहजिया उपजै बिनसै नाहिं॥[13]

एकादशी तिथि को आधार बनाकर सहजोबाई समझाती हैं कि पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और मन, इन ग्यारह को वश में कर लेना चाहिये। जगत् की आस, कल्पना और कलह की वृत्ति छोड़ देनी चाहिये। अंतर्मुख अभ्यास करते–करते जब साधक का मन स्थिर हो जाये, तो उसे अपनी

आत्मा को शब्द स्वरूप परमात्मा में लीन कर देना चाहिये। ऐसा करने से जीव को जन्म–मरण के दु:ख से छुटकारा मिल जायेगा।

द्वादसी

द्वादस दावा दूर करि दावे ही में दुक्ख।
राग दोष और आपदा अकस निबारै सुक्ख॥
अकस निबारै सुक्ख मोहिं चरनदास दुहाई।
तामस सब ही त्याग तासु में बहुत भलाई॥
काम क्रोध मद लोभ कूँ ज्ञान अगिन सूँ जार।
जब निर्मल ह्वै सहजिया आनँद लहै अपार॥[14]

सहजोबाई ने बारहवीं तिथि के माध्यम से सांसारिक पदार्थों पर अपना दावा दूर करने की शिक्षा दी है। परमार्थ के इच्छुक को सब से पहले संसार की किसी वस्तु को अपना समझने की भावना का त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि इनमें आसक्ति होना जीव के सब दु:खों का मूल कारण है। राग–द्वेष की भावना दूर होने पर सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

परमार्थ के इच्छुक को चाहिये कि अंतर में ज्ञानरूपी ज्योति जलाये, ताकि उसके काम, क्रोध आदि सभी विकार नष्ट हो जायें। इस प्रकार से जब अज्ञानता दूर होती है, तो जीवात्मा पूर्ण रूप से निर्मल हो जाती है और आनंदरूप प्रभु में लीन हो जाती है।

तेरस

तेरस तन अचरज महा छिनभंगी छल रूप।
देखत ही देखत गये कहा रंक कहा भूप॥

कहा रंक कहा भूप कोई रहने नहिं पावै।
इत सूँ सबही जाहि बहुरि उत सूँ नहिं आवै॥
इतने ऊपर घर करै महल दरब सन्तान।
हाँसी आवै सहजिया ये मूरख मस्तान॥[15]

सहजोबाई द्वारा वर्णित तेरहवीं तिथि जीव में यह भाव दृढ़ कराती है कि 'तेरा तन अचरज है'–चाहे राजा हो या रंक, यहाँ कोई भी स्थायी रूप से नहीं रह पाता और जो यहाँ से चला गया वह लौटकर नहीं आता। मनुष्य-शरीर प्रभु की आश्चर्यजनक रचना है। यह सच्चा या स्थायी होने का भ्रम उत्पन्न करता है, परंतु वास्तव में मिथ्या और क्षणभंगुर है। राजा और भिखारी दोनों का शरीर समान रूप से नाशवान् है। जो लोग बड़ी-बड़ी हवेलियों, महलों, धन-दौलत और बेटे-बेटियों को अपना मानते हुए उन्हीं में आसक्त रहते हैं, उन अज्ञानी जीवों की मूर्खता पर हँसी आती है।

चौदस

चौरासी भुगती घनी बहुत सही जम मार।
भरम फिरे तिहुँ लोक में तहू न मानी हार॥
तहू न मानी हार मुक्ति की चाह न कीन्ही।
हीरा देही पाय मोल माटी के दीन्ही॥
मूरख नर समझै नहीं समझाया बहु बार।
चरनदास कहैं सहजिया सुमिरै ना करतार॥[16]

अज्ञानी जीव चौरासी के दु:ख भोगता है, यमदूतों से मार खाता है, मायामयी त्रिलोकी को सत्य समझकर इसमें भटकता रहता है, फिर भी

वह इन दु:खों से मुक्ति प्राप्त करने के बारे में सोचता तक नहीं। वह प्रभुभक्ति के लिए मिले इस अमूल्य मानव-शरीर को संसार के झूठे और व्यर्थ के धंधों में नष्ट कर देता है और बार-बार समझाने पर भी प्रभुभक्ति की ओर कोई ध्यान नहीं देता।

पूनो

पूनो पूरा गुरु मिलै मेटै सब सन्देह।
सोवत सूँ चेतन्न होय देखै जाग्रत गेह॥
देखै जाग्रत गेह जहाँ सूँ सुपने आयौ।
जग कूँ जान्यौ साँच रूप अपनो बिसरायौ॥
चरनदास कहैं सहजिया गुरु चरनन चित लाव।
तिमिर मिटै अज्ञान कूँ ज्ञान चाँदनो पाव॥[17]

सहजोबाई पूर्णिमा तिथि के माध्यम से इस विश्वास को दृढ़ कराती हैं कि अंतर में ज्ञान की पूर्णता सतगुरु की कृपा से होती है। उसके साथ यह भी संकेत है कि परमात्मा में पूरी तरह लीन हो जाना ही मनुष्य-जीवन के उद्देश्य की पूर्णता है।

सतगुरु जीव को आत्मा और परमात्मा के परस्पर संबंध के बारे में बताते हैं और बहिर्मुखी भक्ति से अंतर्मुखी साधना में लगाते हैं। ऐसा होने पर शिष्य का बंधन से मुक्ति की ओर तथा दु:ख से सुख की ओर सफ़र आरंभ हो जाता है।

वर्तमान अवस्था में शिष्य जगत् के प्रति जाग रहा है, परंतु जगदीश के प्रति सोया हुआ है। सोये हुए व्यक्ति को स्वप्न में दिखायी देता संसार सच्चा प्रतीत होता है। नींद खुलने पर उसे पता चलता है कि वह तो केवल स्वप्न था। उसी प्रकार सतगुरु के उपदेश पर चलनेवाला जीव जब

निज घर के प्रति सचेत हो जाता है, तो उसे संसाररूपी स्वप्न का ज्ञान हो जाता है।

सोलह तिथि पूरन भई, सहजो करी बखान।
चरनदास की दया सूँ, मिटौ सकल अज्ञान॥[18]

सोलह तिथियों का सार यह है कि सतगुरु की अपार दया द्वारा अज्ञानता के अंधकार का धीरे-धीरे नाश हो जाता है और जीव अंतर में ज्ञान के प्रकाश से भरपूर हो जाता है। इसलिए शरीर और संसार का मोह त्यागकर सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति में लगना चाहिये।

चेतावनी

साधो भौसागर के माहिं, काल होरी खेलाई

साधो भौसागर के माहिं, काल होरी खेलाई॥ टेक॥
भाँति भाँति के रंग लिये हैं, करत जीवन की घात।
बूढ़ा बाला कछू न देखै, देखै ना दिन रात॥
निहचै मौत लिये सँग रानी, नाना रंग सम्हार।
बड़े बड़े अभिमानी नामी, सो भी लीन्हे मार॥
सूरज चंद वा भय तें काँपैं, स्वर्ग माहिं सब देव।
तन-धारी सबही थर्रावैं, ज्ञानी जानत भेव॥
आपन कूँ देही नहिं जानैं, जानत आतम साच।
चरनदास कह सहजो बाई, ताहि न आवै आँच॥[1]

इस संसाररूपी सागर में काल जीवों को राग-द्वेष, आशा-तृष्णा, सुख-दुःख आदि की होली खेला रहा है। वह न दिन देखता है, न रात, न बूढ़ा, न बच्चा। वह अनेक प्रकार से जीवों को मृत्यु का ग्रास बना रहा है। मृत्यु के शस्त्र से वह बड़े-बड़े अहंकारियों को भी मार देता है। साधारण जीवों की तो बात ही क्या! चाँद, सूर्य और स्वर्गलोक के देवता भी उससे भयभीत होकर काँपते हैं, परंतु जो ज्ञानी नश्वर शरीर से ऊपर उठकर अपने अविनाशी आत्मिक स्वरूप की पहचान कर लेते हैं, काल उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

सुमिर सुमिर नर उतरो पार

सुमिर सुमिर नर उतरो पार, भौसागर की तीछन धार॥ टेक॥
धर्म जिहाज माहिं चढ़ि लीजै, सँभल सँभल ता में पग दीजै।
स्रम करि मन को संगी कीजै, हरि मारग को लागौ यार॥
बादवान पुनि ताहि चलावै, पाप भरै तौ हलन न पावै।
काम क्रोध लूटन को आवै, सावधान ह्वै करौ सँभार॥
मान पहाड़ी तहाँ अड़त है, आसा तृस्ना भँवर पड़त है।
पाँच मच्छ जहँ चोट करत हैं, ज्ञान आँखि बल चलौ निहार॥
ध्यान धनी का हिरदे धारै, गुरु किरपा सूँ लगै किनारे।
जब तेरी बोहित उतरै पारे, जन्म मरन दुख बिपता टारे॥
चौथे पद में आनंद पावै, या जग में तू बहुरि न आवै।
चरनदास गुरुदेव चितावैं, सहजो बाई यही बिचार॥[2]

भवसागर की तीव्र धारा से बचकर पार जाने का एकमात्र साधन प्रभु के नाम का सुमिरन है। इसके लिये अधर्म को छोड़कर धर्म के जहाज़ पर सवार होना पड़ता है। फिर पूर्णतया सचेत होकर मन को निश्चल करके प्रभुभक्ति के मार्ग पर सँभलकर क़दम बढ़ाने चाहियें। जहाज़ में पापों के पत्थर भर देंगे तो इसके बादबान (परदे) काम करना बंद कर देंगे। पाँच विकाररूपी डाकू जहाज़ में लदा भक्तिरूपी माल लूटने के लिए सदा ताक में रहते हैं, इसलिये सचेत रहते हुए उनके वार से बचना चाहिये। अपने ज्ञानचक्षु खोलकर रखने चाहियें, ताकि जहाज़ अहंकाररूपी पर्वत के साथ टकरा न जाये या आशा-तृष्णा के भँवर में न फँस जाये या फिर काम-क्रोधरूपी मगरमच्छ इसे मार्ग में न रोक लें। अगर ध्यान सदा प्रभु में लीन रहे तो सतगुरु की कृपा से भवसागर से पार हो जाते हैं। जन्म-मरण की विपत्ति दूर हो जाती है। चौथे पद अर्थात् अमरपुर धाम में निवास हो जाता है और फिर संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता।

जाग जाग जो सुमिरन करै

जाग जाग जो सुमिरन करै। आप तरै औरन लै तरै॥ टेक॥
हरि की भक्ति माहिं चित देवै। पद पंकज बिन और न सेवै।
आन धरम कूँ संग न लेवै। फलन कामना सब परिहरै॥
काल ज्वाल सबही छुट जावै। आवा गवन की डोरि नसावै।
जोनी संकट फिरि नहिं आवै। बार बार जनमै नहिं मरै॥
ऊँची पदवी जग में पावै। राजा राना सीस नवावै।
तन छूटे जा मुक्ति समावै। जो पै ध्यान धनी का धरै॥
ह्याँ पै सुख जो जानै कूरा। गुर चरनन में लागै पूरा।
बेग सम्हारै जो जन सूरा। चरनदास सहजो हो पूरा॥[3]

धन्य है वह साधक जो सावधान होकर प्रभु के नाम का सुमिरन करता है। उसका अपना उद्धार तो होता ही है, वह अन्य लोगों के उद्धार में भी सहायक होता है। वह हर तरह के बाहरी धर्मकर्म से ध्यान हटाकर इच्छा-तृष्णा का त्याग कर देता है और तन-मन को एकाग्र करके प्रभु के नाम का सुमिरन करता है। ऐसा प्रभुभक्त काल के बंधन तथा निम्न योनियों में गिरने से बच जाता है। उसका आवागमन से सदा के लिए छुटकारा हो जाता है। जो साधक प्रभु के ध्यान में मग्न रहता है, उसके आगे राजा-महाराजा भी शीश नवाते हैं। वह जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। मनुष्य-जन्म के असली उद्देश्य को समझते हुए जो नाम के सुमिरन में लग जाता है, वही सच्चा शूरवीर है। जीव को चाहिये कि संसार के झूठे सुखों की ओर से ध्यान हटाकर सतगुरु के चरणों की शरण ले और प्रभु की भक्ति में लगकर सच्चे सुख का अधिकारी बन जाये।

परो मन हरि गुन गावत बान

परो मन हरि गुन गावत बान।
बिन गोपाल और जो भाखै, तौ तोहि गुर की आन॥
बेद माहिं ब्रह्मा गुन गावै, संकर सींगी माहि।
सेस सहस मुख निस दिन गावै, समौ बिचारत नाहिं॥
बीन लिये नारद मुनि गावैं, गावैं ब्यास उचार।
गनपति सारद गान करत हैं, गंधर्व सभी पुकार॥
गुनाबाद गावत प्रभु परसन, बड़े भक्त को भाव।
सुकदेव गाव चरन हीं दासा, सहजो कूँ भी चाव॥[4]

मन को सदा हरि की भक्ति में मग्न रहने की आदत बना लेनी चाहिये। प्रभुभक्ति के अलावा किसी दूसरी ओर ध्यान देना गुरु के उपदेश को लाज लगाना है। ब्रह्मा ने वेदों में और शिवजी ने सिंगी बजाकर प्रभु की स्तुति की है। शेषनाग जी हज़ारों जीभों द्वारा लगातार प्रभु के गुण गाते हैं। नारद मुनि वीणा द्वारा और ऋषि वेदव्यास अपनी बानी द्वारा प्रभु का गुणगान करते हैं। गणेश जी, विद्या की देवी सरस्वती और स्वर्गों के गवैये भी सदा प्रभु की महिमा गाते हैं। सतगुरु सुखदेव और सतगुरु चरनदास द्वारा किये गये प्रभु के गुणगान से प्रेरित होकर सहजोबाई कहती हैं कि मेरे मन में भी प्रभुभक्ति का चाव पैदा हुआ है।

हरि बिनु तेरौ ना हितू

हरि बिनु तेरौ ना हितू, कोइ या जग माहीं।
अन्त समय तू देखि ले, कोइ गहै न बाँहीं॥
जम सूँ कहा छुटा सकै, कोइ संग न होई।
नारी हू फटि रहि गई, स्वारथ कूँ रोई॥
पुत्र कलित्तर कौन के, भाई अरु बन्धा।

सब ही ठोक जलाइ हैं, समझै नहिं अन्धा॥
महल दरब ह्याँ ही रहै, पचि पचि करि जोड़ा।
करहा गज ठाढ़े रहैं, चाकर और घोड़ा॥
पर काजै बहु दुख सहे, हरि सुमिरन खोया।
सहजो बाई जम घिरैं, सिर धुनि धुनि रोया॥[5]

हरि के बिना जीव का कोई सच्चा हितैषी नहीं है। जब अंत समय में दु:ख सहने पड़ते हैं तो कोई भी सहायता नहीं कर पाता। न कोई जाते समय साथ जा सकता है और न ही यमदूतों से छुड़वा सकता है। लोग अपने स्वार्थ के कारण विलाप करते हैं, परंतु सहायता कोई नहीं कर सकता। पुत्र, स्त्री, भाई-बहन, सगे-संबंधी मृतक को अग्नि में जला देते हैं। अज्ञानी जीव संसार और इसके संबंधों की वास्तविकता समझने का प्रयत्न नहीं करता। परिश्रम से एकत्रित किया गया धन भी यहीं रह जाता है। महल-बँगले, ऊँट, हाथी-घोड़े और नौकर-चाकर भी यहीं रह जाते हैं। इसलिये जीव का वास्तविक कार्य हरि की भक्ति करना है, परंतु यह पराये धंधों में ही जन्म बरबाद कर देता है। जब यमदूत इसे घेर लेते हैं तो यह सिर धुन-धुनकर पछताता है, परंतु उस समय पछताने से कोई लाभ नहीं होता।

हरि हर जप लेनी औसर बीतो जाय

हरि हर जप लेनी औसर बीतो जाय।
जो दिन गये सो फिर नहिं आवैं, कर बिचार मन लाय॥
या जग बाजी साच न जानो, ता में मत भरमाय।
कोइ किसी का है नहिं बौरे, नाहक लियौ लगाय॥
अंत-समय कोइ काम न आवै, जब जम देहि बोलाय।
चरनदास कहैं सहजो बाई, सत संगत सरनाय॥[6]

मनुष्य-जन्म से लाभ उठाकर हरि का सुमरिन करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य-जन्म का अमूल्य अवसर शीघ्रता से व्यतीत होता जा रहा है। बीता हुआ समय फिर वापस नहीं आता। संसार का खेल झूठा है, इसे सत्य समझने का भ्रम नहीं होना चाहिये। यहाँ कोई भी और कुछ भी अपना नहीं है। संसार की शक्लों और पदार्थों के साथ मोह करना अज्ञानता है। जब अंत समय यमदूतों का बुलावा आ जाता है तो कोई किसी का साथ नहीं दे सकता। इसलिए हमें झूठे जगत् का मोह त्यागकर संतों की शरण लेनी चाहिये।

दोहे

सहजोबाई के अधिकतर दोहों की व्याख्या उपदेश के अलग-अलग अंगों में की जा चुकी है। ये दोहे दोबारा दिये जा रहे हैं ताकि पाठक इनके मूल रूप का आनंद उठा सकें।

गुरु महिमा

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलैं, समझ देख मन माहिं॥

परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत बेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान॥

अष्टादस और चार षट, पढ़ि पढ़ि अर्थ कराहिं।
भेद न पावैं गुरु बिना, सहजो सब भर्माहिं॥

सकल बिकल सब छोड़ कर, गुरु चरनन चित लाव।
सहजो निस्चै हरि जपो, बहुर न ऐसो दाव॥

दीपक ले गुरु ज्ञान को, जगत अँधेरे माहिं।
काम क्रोध मद मोह में, सहजो उरझै नाहिं॥

सहजो गुरु परताप सूँ, होय समुन्दर पार।
बेद अर्थ गूँगा कहै, बानी कितइक बार॥

सहजो सतगुरु के मिले, भये और सूँ और।
काग पलट गति हंस ह्वै, पाई भूली ठौर॥

सहजो यह मन सिलगता, काम क्रोध की आग।
भली भई गुरु ने दिया, सील छिमा का बाग॥

निस्चै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार।
चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार॥

ज्ञान दीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया कोट।
साजन बसि दुर्जन भजे, निकस गई सब खोट॥

सहजो गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार।
तीन लोक दृष्टा भये, मिटयौ भरम अँधियार॥

सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही, सूझि पड़ै भगवन्त॥

सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतम रूप।
तिमिर गयौ चाँदन भयौ, पायौ परघट गूप॥

सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेटयौ मन सन्देह।
रोम रोम सूँ प्रेम उठि, भींज गई सब देह॥

सहजो गुरु परसन्न ह्वै, एक कह्यौ परसंग।
तन मन तें पलटी गई, रँगी प्रेम के रंग॥

सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूँद लिए दोउ नैन।
फिर मो सूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन॥

सहजो गुरु किरपा करी, कहा कहूँ मैं खोल।
रोम रोम फुल्लित भई, मुखे न आवै बोल॥

चिउंटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय॥[1]

साध महिमा

साध मिले गुरु पाइया, मिटि गये सब सन्देह।
सहजो कूँ सम ही भयो, कहा गिरवर कहा गेह॥

साध मिले पूरी भई, जनम जनम की आस।
सहजो पायौ भाव तें, सतसंगत में बास॥

सहजो साधन के मिले, मन भयो हरि के रूप।
चाह गई थिरता भई, रंक लख्यौ सोइ भूप॥

साध मिले हरि ही मिले, मेरे मन परतीत।
सहजो सूरज धूप ज्यों, जल पाले की रीति॥

साध मिले दुख सब गये, मंगल भये सरीर।
बचन सुनत ही मिटि गई, जनम मरन की पीर॥

साध संग में चाँदना, सकल अँधेरा और।
सहजो दुर्लभ पाइये, सतसंगत में ठौर॥

सतसंगत की नाव में, मन दीजै नर नार।
टेक बल्ली दृढ़ भक्ति की, सहजो उतरै पार॥

साध संग तीरथ बड़ो, ता में नीर बिचार।
सहजो न्हाये पाइये, मुक्ति पदारथ चार॥

जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय॥

सहजो संगत साध की, काग हंस ह्वै जाय।
तजि के भच्छ अभच्छ कूँ, मोती चुगि चुगि खाय॥

जब चेतै जबही भला, मोह नींद सूँ जाग।
साधू की संगत मिलै, सहजो ऊँचे भाग॥

जो जन आवै टूट करि, साधू ह्वै दरसाय।
सहजो साँभर खेत में, गिरि साँभर ह्वै जाय॥

सहजो संगत साध की, भली भई कुसलात।
नातर आवा गवन में, जम ही करते घात॥

सहजो संगत साध की, छूटै सकल बियाध।
दुर्मति पाप रहै नहीं, लागै रंग अगाध॥

साध बृच्छ बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगत बाग में, नाना फल रहे झूल॥

सहजो दरसन साध का, दो नैनों भरि लेहि।
तिहूँ ताप नसि जायँगे, सीतल होगी देहि॥

सहजो दरसन साध का, देखूँ वारूँ प्रान।
जिन की किरपा पाइये, निर्भय पद निर्बान॥[2]

साध लक्षण

चौपाई

साध सोई जो काया साधै। तजि आलस और बाद बिबादै॥
गहै धारना सब गति भारी। तजै बिकलता अस्तुति गारी॥
छिमावन्त धीरज कूँ धारै। पाँचो बस करि मन कूँ मारै॥
त्यागै झूँठ साँच मुख बोलै। चित इस्थिर इत उत ना डोलै॥

तन जग में मन हरि के पासा। लोक भोग सूँ सदा उदासा॥
जत सत नख सिख सीतलताई। तन मन बचन सकल सुखदाई॥
निर्गुन ध्यानी ब्रह्म गियानी। मुख सूँ बोलै अमृत बानी॥
समझ एकता भाव न दूजे। जिनके चरन सहजिया पूजे॥

दोहा

निर्दुन्दी निर्बैरता, सहजो अरु निर्बास।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस॥

ज्ञान मध्य इस्थिर दसा, ध्यान मध्य गलतान।
सहजो साधू राम के, तजै बड़ाई मान॥

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरि नाम।
जो बोलैं तौ हरि कथा, भक्ति करैं नि:काम॥

तन मन मेटैं खेद सब, तज उपाधि की चाल।
सहजो साधू राम के, तज कनक और बाल॥

दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन।
चेतनता हिरदे बसै, सहजो सीतल बैन॥

तन कूँ साधे ही रहैं, चित कूँ राखैं हाथ।
सहजो मन कूँ यौं गहैं, चले न इन्द्रिन साथ॥

नित ही प्रेम पगे रहैं, छके रहैं निज रूप।
समदृष्टी सहजो कहै, समझैं रंक न भूप॥

सुरत नहीं ब्यौहार में, जगत रीत सूँ पीठ।
सनमुख हैं गुरु भक्ति में, सहजो हरि के ईठ॥

साध असंगी सँग तजैं, आतम ही को संग।
बोध रूप आनंद में, पियैं सहज को रंग॥

दुर्जन ना साजन नहीं, नहीं बैर नहिं प्रीत।
सकल बिकल उनके नहीं, सहजो हरि जन रीत॥

सहजो हरि जन मुक्त हैं, डार दुई की पोट।
चाह गई संसा मिटा, बंधन छूटे कोट॥

राग द्वेष सूँ रहित हैं, बैरागी निरबन्ध।
सहजो इच्छा ना रही, माया ब्रह्म की संध॥

आसन संजम साध करि, साधै प्रान आपान।
सहजो मद्रा जौ सधै, तौ जोगी परवान॥

तीनों बन्ध लगाय के, अनहद सुनै टकोर।
सहजो सुन्न समाधि में, नहीं साँझ नहिं भोर॥

ना सुख बिद्या के पढ़े, ना सुख बाद बिबाद।
साध सुखी सहजो कहै, लागै सुन्न समाध॥

मुए दुखी जीवत दुखी, दुखी भूख आहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ नित्त बिहार॥

चाह दुखी आसा दुखी, महा दुखी अज्ञान।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ केवल ज्ञान॥

धनवन्ते सब ही दुखी, निर्धन हैं दुख रूप।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ भेद अनूप॥

रंक दुखी राजा दुखी, दुखी सकल संसार।
साध सुखी सहजो कहै, पाया भेद अपार॥

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।
साध सुखी सहजो कहै, तृस्ना रोग गये॥[3]

बैराग उपजावन का अंग

सहजो भज हरि नाम कूँ, तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोइ है नहीं, अपनी सगी न देह॥

यही कही गुरुदेव जू, यही पुकारैं सन्त।
सहजो तज या जगत कूँ, तोहि तजैगो अन्त॥

कलह कलपना दुख घना, सदा रहै मन भंग।
अकस भरे कूँ छोड़िये, सहजो जग बेढंग॥

जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग॥

अचरज जीवन जगत में, मरिबो साँचो जान।
सहजो अवसर जात है, हरि सूँ ना पहिचान॥

जग से या जग में पगा, जग सँग दीन्हे प्रान।
राम तजै जग सूँ रचै, सहजो निस्चय हान॥

झूठा नाता जगत का, झूठा है घर बास।
यह तन झूठा देख कर, सहजो भई उदास॥

जब लग चावल धान में, तब लग उपजै आय।
जग छिलके कूँ तजि निकस, मुक्ति रूप ह्वै जाय॥

कुटँब सँगाती बीच में, आदि अन्त नहिं होय।
बीच मिले बिच ही गये, सहजो संग न कोय॥

सहजो स्वारथ सब लगे, दारा सुत औ बीर।
जीवत जोतैं बैल ज्यों, मुए चढ़ावैं सीर॥

कोई किसी के संग ना, रोग मरन दुख बन्ध।
इतने पर अपनौ कहैं, सहजो ये नर अन्ध॥

दरद बटाय सकैं नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद॥

मर बिछुड़ै जो कुटँब सूँ, बहुर न देखै आय।
महल द्रब्य सन्तान कूँ, सहजो पचै बलाय॥

मरि बिछुड़न यों होइगो, ज्यों तरवर सूँ पात।
सहजो काया प्रान यों, मुख सेती ज्यों बात॥

सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहिं जायँ।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायँ॥

सहजो धन माँगे कुटँब, गाड़ा धरा बताय।
जो कछु है सो दे हमैं, फिर पाछे मरि जाय॥

मुख देखै ढाँपै भजै, तड़ दे तोड़ै नेह।
सहजो पति सुत निज हितू, जारि करैंगे खेह॥

काढ़ काढ़ बेगी कहैं, भीतर बाहर लोय।
जीव छुटे सहजो कहै, तन का सगा न कोय॥

यह मन्दिर यह नारि है, यह धन यह सन्तान।
तेरो ना सहजो कहै, काहे करत गुमान॥

जन्म जुवा सों हारिहो, कियो न लाहा सूल।
डार पात फल सींच कर, सहजो काटत मूल॥

सहजो गुरु परताप सूँ, ऐसी जान पड़ी।
नहीं भरोसा स्वास का, आगे मौत खड़ी॥

भीतर का भीतर खुलै, कै बाहर खुलि जाय।
देह खेह ह्वै जायगी, जैहौ जन्म गँवाय॥

स्वासा दीपक के बुझे, होत अँधेरी देह।
सहजो सूनी प्रान बिनु, जब कैसो हरि नेह॥

सहजो फिर पछितायगी, स्वास निकसि जब जाय।
जब लग रहै सरीर में, राम सुमिर गुन गाय॥

स्वास खजानो जातु है, ता की सोधी नाहिं।
सहजो खर्चो का रह्यो, कर हिसाब घर माहिं॥

सहजो नौबत स्वास की, बाजत है दिन रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कूँ नहिं चैन॥

हिरनाकुस से ह्वै मिटे, दुर्जोधन सिसुपाल।
कुंभकरन रावन गये, सहजो खाया काल॥

निस्चै मरना सहजिया, जीवन की नहिं आस।
कै टूटी सी झोपड़ी, कै मन्दिर में बास॥

कै गरीब सिर टोकरी, कै सिर छत्तर होय।
जन्म मरन में एक से, सहजो भाँति न दोय॥

मरना है रहना नहीं, जाना वाही ठौर।
सहजो कै कंङ्गाल हो, कै हो द्रब्य कड़ोर॥

आपन हूँ थिर होहिं जो, करैं और को सोग।
सहजो साथी नाव के, सभी बटाऊ लोग॥

बैठि बैठि बहुतक गये, जग तरवर की छाँहिं।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि मिलि बिछुड़त जाहिं॥

यह रस्ता बहता रहै, थमै नहीं छिन एक।
बहु आवैं बहु जातु हैं, सहजो आँखन देख॥

जग देखत तुम जावगे, तुम देखत जग जाय।
सहजो योंही रीति है, मत कर सोच उपाय॥

मुए सो काया जारई, बहुरि न मिलिहै आय।
रोये तें कहा होत है, सहजो झुरै बलाय॥

झुरि झुरि के पिंजर भये, रोय गँवाये नैन।
मरे गये सो ना मिले, सहजो सुने न बैन॥

जो रोये सूँ बाहुरै, तौ रोवौ दिन रात।
तन छीजै वह न मिलै, सहजो कूड़ी बात॥

काहे कूँ रोवत रहौ, कल्प न होवै काज।
सहजो मुए सो मरि गये, आवैं काल्ह न आज॥

देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
दुइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त॥

जो तेरा हित देह सूँ, नख सिख ताही खंड।
जीव अमर सहजो कहै, ब्यापक और अखंड॥

तेरा थानी क्यों मुवा, क्यों न रखा गहि बाहिं।
सहजो बहुतक मिलि छुटे, चौरासी के माहिं॥

कभुवक तेरा बाप है, कभुवक तेरा पूत।
कभुवक तेरा मित्र है, कभुवक तेरा सूत॥

जो तेरे सँग प्यार था, जाता वाके साथ।
कै वाही कूँ राखता, सहजो गहि कर हाथ॥

कलप रोय पछिताय थक, नेह तजौगे कूर।
पहिले ही सूँ जो तजै, सहजो सो जन सूर॥

यों खाता यों सोवता, मीठे कहता बोल।
यह बिचार तू मत करै, चित रहै डाँवाडोल॥

बैठि पहिरि यों चालता, बस्तर भूषन लाल।
यह बिचार तू मत करै, छल रूपी जग जाल॥

आगे रो रो क्या किया, अब क्यों रोवै भाँड।
संग न आया ना चलै, यह जग झूठी माँड॥

आगे मुए सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
सहजो पर कूँ क्या झुरै, आपन ही कूँ रोय॥

बहुत गई थोड़ी रही, यह भी रहसी नाहिं।
जन्म जाय हरि भक्ति बिनु, सहजो झुर मन माहिं॥[4]

नाम का अंग

लख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतन्त।
जन्म मरन छूटै नहीं, बिना सरन भगवन्त॥

जज्ञ दान तीरथ करै, पूजा भाँति अनेक।
मुक्ति न पावै सहजिया, बिना भक्ति हरि एक॥

इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्म की आव।
आगे तौ भी मरन है, सहजो सकल बहाव॥

राम नाम ले सहजिया, दीजै सर्ब अकोर।
तीन लोक के राज लों, अन्त जाहुगे छोर॥

बिना भक्ति थोथे सभी, जोग जज्ञ आचार।
राम नाम हिरदे धरो, सहजो यही बिचार॥

यह अवसर दुर्लभ मिलै, अचरज मनुषा देह।
लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥

एक घड़ी का मोल ना, दिन का कहा बखान।
सहजो ताहि न खोइये, बिना भजन भगवान॥

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय॥

सहजो जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप।
राम बिना धिर्कार है, सुन्दर धनवंत भूप॥

सहजो नौका नाम है, चढ़ि के उतरौ पार।
राम सुमिरि जान्यो नहीं, ते डूबे मँझधार॥

सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस घर घोर।
ता में नाम जहाज है, पार उतारैं तोर॥

पावक नाम जलाइ है, पाप ताप दुख दुन्द।
राम सुमिर सहजो कहै, जो बिसरै सो अन्ध॥

कनक दान गज दान दे, उनन्चास भू दान।
निस्चै करि सहजो कहै, ना हरि नाम समान॥

मेंह सहै सहजो कहै, सहै सीत और घाम।
पर्बत बैठो तप करै, तौ भी अधिको नाम॥

चरनदास हरि नाम की, महिमा कही अपार।
सो सहजो हिरदे धरी, अचल धारना धार॥

सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदे माहिं दुराय।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहिं कोइ पाय॥

राम नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार।
सहिजो कै कर्तार ही, जानै ना संसार॥

बैठे लेटे चालते, खान पान ब्यौहार।
जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार॥

जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय।
सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय॥

आठ पहर सुमिरन करै, बिसरै ना छिन एक।
अष्टादस और चार में, सहजो यही बिसेष॥

सहजो सुमिरन सब करैं, सुमिरन माहिं बिबेक।
सुमिरन कोई जानि है, कोटों मद्धे एक॥

जन्म मरन बन्धन कटै, टूटै जम की फाँस।
राम नाम ले सहजिया, होय नहीं जग हाँस॥

चौरासी के दुख छुटैं, छप्पन नर्क तिरास।
राम नाम ले सहजिया, जम पुर मिलै न बास॥

गर्भ बास संकट मिटै, जठर अगिन की आँच।
राम नाम ले सहजिया, मुख सूँ बोलो साँच॥

सील छिमा संतोष गहि, पाँचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीत॥

काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निस्चै सहजो मुक्ति ह्वै, लहै अमरपुर धाम॥

काम क्रोध मोह लोभ तन, ले सुमिरै हरि नाम।
मुक्ति न पावै सहजिया, ना रीझैंगे राम॥

कामी मति भिष्टल सदा, चलै चाल बिपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहिं अनीत॥

सदा रहै चित भंग ही, हिरदे थिरता नाहिं।
राम नाम के फल जिते, काम लहर बहि जाहिं॥

सहजो क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात।
सबही सूँ ऐंठो रहै, करै बचन की घात॥

कूकर ज्यों भूसत फिरै, तामस मिलवाँ बोल।
घर बाहर दुख रूप है, बुधि रहै डाँवाडोल॥

मन मैला तन छीन है, हरि सूँ लगै न नेह।
दुखी रहै सहजो कहै, मोह बसै जा देह॥

मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूँ हेत॥

नीच लोभ जा घट बसै, झूठ कपट सूँ काम।
बौरायो चहुँ दिसि फिरै, सहजो कारन दाम॥

द्रब्य हेत हरि कूँ भजै, धन ही की परतीत।
स्वारथ ले सब सूँ मिलै, अन्तर की नहिं प्रीत॥

अभिमानी मुख धूर है, चहै बड़ाई आप।
डिंभ लिये फूलो फिरै, करतो डरै न पाप॥

प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय॥[5]

नन्हा महा उत्तम का अंग

धन छोटापन सुख महा, धिरग बड़ाई ख्वार।
सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के बचन सम्हार॥

सहजो तारे सब सुखी, गहै चन्द और सूर।
साधू चाहै दीनता, चहै बड़ाई कूर॥

अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड़।
सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार॥

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव॥

नन्ही चींटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेंह।
सहजो कुञ्जर अति बड़ो, सिर में डारै खेह॥

सहजो चन्दा दूज का, दरस करै सब कोय।
नन्हे सूँ दिन दिन बढ़ै, अधिको चाँदन होय॥

बड़ा भये आदर नहीं, सहजो आँखिन देख।
कला सभी घट जायगो, कछू न रहसी रेख॥

सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय।
नारी परदा ना करै, गोदहि गोद खेलाय॥

बड़ा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागि है, सहजो मोटी मार॥

बारे दीवे चाँदना, बड़ा भये अँधियार।
सहजो तृन हलका तिरै, डूबै पत्थर भार॥

भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास की, काटै ना तरवार॥

चरनदास सतगुरु कही, सहजो कूँ यह चाल।
सकौ तो छोटा हूजिये, छूटै सब जंजाल॥

साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुञ्जर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक॥

ऊँचे उज्जल भाग सूँ, आय मिले गुरुदेव।
प्रेम दिया नन्हा किया, पूरन पायो भेव॥

सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदान।
नख सिख आई दीनता, भजे बड़ाई मान॥

सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदैन।
गये कुलच्छन देह सूँ, सुलछन पायो चैन॥

औगुन थे सो सब गये, राज करैं उनतीस।
प्रेम झिला प्रीतम मिला, सहजो वारा सीस॥[6]

प्रेम का अंग

चरनदास सतगुरु दियो, प्रेम पियाला छान।
सहजो मतवारे भये, तुरिया तत गलतान॥

प्रेम दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर॥

प्रेम दिवाने जो भये, प्रीतम के रँग माहिं।
सहजो सुधि बुधि सब गई, तन की सोधी नाहिं॥

प्रेम दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप॥

प्रेम दिवाने जो भये, कहैं बहकते बैन।
सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहू टपकै नैन॥

प्रेम दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट॥

प्रेम दिवाने जो भये, नेम धरम गयो खोय।
सहजो नर नारी हँसैं, वा मन आनँद होय॥

प्रेम दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह।
पाँव पड़ै कितकै किती, हरि सम्हाल जब लेह॥

कबहूँ हकधक हो रहै, उठै प्रेम हित गाय।
सहजो आँख मुँदी रहै, कबहूँ सुधि हो जाय॥

मन में तो आनँद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग॥

प्रेम लटक दुर्लभ महा, पावै गुरु के ध्यान।
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान॥[7]

अजपा जाप का अंग

ऐसा सुमिरन कीजिये, सहज रहै लौ लाय।
बिनु जिभ्या बिनु तालुवै, अन्तर सुरत लगाय॥

हंसा सोहं तार कर, सुरति मकरिया पोय।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय॥

बरत बाँध कर धरन में, कला गगन में खाय।
अर्ध उर्ध नट ज्यौं फिरै, सहजो राम रिझाय॥

लगै सुन्न में टकटकी, आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिं करि, सहजो रहै समाय॥

सहज स्वाँस तीरथ बहै, सहजो जो कोइ न्हाय।
पाप पुन्न दोनों छुटैं, हरि पद पहुँचै जाय॥

हक्कारे उठि नाम सूँ, सक्कारे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कहि दीन॥

सब घट अजपा जाप है, हंसा सोहं पुर्ष।
सुरत हिये ठहराय के, सहजो या बिधि निर्ख॥

सब घट ब्यापक राम है, देही नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजो दीपक एक॥[8]

सत्त बैराग जगत मिथ्या का अंग

आतम में जागत नहीं, सुपने सोवत लोग।
सहजो सुपने होत हैं, रोग भोग और जोग॥

कोटि बरस इक छिन लगै, ज्ञान दृष्टि जो होय।
बिसरि जगत औरै बनै, सहजो सुपने सोय॥

ऐसे ही सब स्वप्न है, स्वर्ग मिर्तु पाताल।
तीन लोक छल रूप है, सहजो इन्दरजाल॥

अज्ञानी जानत नहीं, लिप्त भया करि भोग।
ज्ञानी तौ दृष्टा भये, सहजो खुसी न सोग॥

मन माहीं बैराग है, ब्रह्म माहिं गलतान।
सहजो जगत अनित्य है, आतम कूँ नित जान॥

सहजो सुपने एक पल, बीतै बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घर बास॥

मृग तृस्ना जल साँच है, जब लग निकट न जाय।
सहजो तब लग जग बन्यौ, सतगुरु दृष्टि न पाय॥

जैसे बालक जल बिषे, देखि देखि डरपाय।
समझ भई जब भर्म था, सहजो रहै खिसाय॥

ज्ञानी को जग झूठ है, अज्ञानी कूँ साँच।
कोटि लाल कागद लिखे, सहजो बैठा बाँच॥

जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं॥

धूवाँ कौ सो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय।
झाँई माई* सहजिया, कबहूँ साँच न होय॥

ऐसे ही जग झूठ है, आतम कूँ नित जान।
सहजो काल न खा सकै, ऐसो रूप पिछान॥[9]

सच्चिदानंद का अंग

नया पुराना होय ना, घुन नहिं लागै जासु।
सहजो मारा ना मरै, भय नहिं ब्यापै तासु॥

किरै घटै छीजै नहीं, ताहि न भिजवै नीर।
ना काहू के आसरे, ना काहू के सीर॥

---

* बच्चों का एक खेल

रूप बरन वा के नहीं, सहजो रंग न देह।
मीत इष्ट वा के नहीं, जाति पाँति नहिं गेह॥

सहजो उपजै ना मरै, सदबासी नहिं होय।
रात दिवस ता में नहीं, सीत ऊस्न नहिं सोय॥

आग जलाय सकै नहीं, सस्तर सकै न काटि।
धूप सुखाय सकै नहीं, पवन सकै नहिं आटि॥

मात पिता वा के नहीं, नहीं कुटुँब को साज।
सहजो वाहि न रंकता, ना काहू को राज॥

आदि अन्त ता के नहीं, मध्य नहीं तेहि माहिं।
वार पार नहिं सहजिया, लघू दीर्घ भी नाहिं॥

परलय में आवै नहीं, उत्पति होय न फेर।
ब्रह्म अनादी सहजिया, घने हिराने हेर॥

जाके किरिया करम ना, षट दर्सन को भेस।
गुन औगुन ना सहजिया, ऐसो पुरुष अलेस॥

रूप नाम गुन सूँ रहित, पाँच तत्त सूँ दूर।
चरनदास गुरु ने कही, सहजो छिपा हजूर॥

आपा खोजे पाइये, और जतन नहिं कोय।
नीर छीर निर्ताय के, सहजो सुरति समोय॥[10]

निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग

निराकार आकार सब, निर्गुन और गुनवन्त।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो यों भगवन्त॥

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कछु ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप॥

कहा कहूँ कहा कहि सकूँ, अचरज अलख अभेव।
सुने अचंभो सों लगै, सहजो ब्रह्म अलेव॥

वही आप परगट भयो, ईसुर लीला धार।
माहिं अजुध्या और बृज, कौतुक किये अपार॥

चार बीस अवतार धरि, जन की करी सहाय।
राम कृश्न पूरन भये, महिमा कही न जाय॥

भक्त हेत हरि आइया, पिरथी भार उतारि।
साधन की रच्छा करी, पापी डारे मारि॥

निर्गुन सूँ सर्गुन भये, भक्त उधारनहार।
सहजो की दंडौत है, ता कूँ बारम्बार॥

ता के रूप अनन्त हैं, जा के नाम अनेक।
ता के कौतुक बहुत हैं, सहजो नाना भेष॥

गीता में श्रीकृश्न ने, बचन कहे सब खोल।
सब जीवन में मैं बसूँ, कै चर कहा अडोल॥

मैं अखंड ब्यापक सकल, सहज रहा भर पूर।
ज्ञानी पावै निकट हीं, मूरख जानै दूर॥

जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहै बिचार।
सहजो पावै भक्ति सूँ, जा के प्रेम अधार॥

धन्य जसोदा नन्द धन, धन बृजमंडल देस।
आदि निरंजन सहजिया, भयो ग्वाल के भेष॥[11]

दयाबाई

जीवन

सहजोबाई के समान दयाबाई का संबंध भी संत चरनदास जी द्वारा अपनाई गई निर्गुण भक्तिधारा के साथ है। संत चरनदास जी के शिष्यों में से दयाबाई के नाम से भी एक गद्दी प्रसिद्ध है। सहजोबाई ने दिल्ली क्षेत्र में सतगुरु के उपदेश को आगे बढ़ाने का कार्य किया, लेकिन दयाबाई का कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश था।

सहजोबाई की तरह दयाबाई के जीवन से संबंधित अधिक विवरण प्राप्त नहीं है।* संत-महात्मा नम्रता के पुंज होते हैं। वे अपने जीवन के बारे में कुछ लिखना उचित नहीं समझते। इसी लिये उनके जीवन के कई पहलू गुप्त ही रह जाते हैं। यह बात बिलकुल सही है कि सहजोबाई की तरह दयाबाई के पूर्वज भी संत चरनदास जी के सजातीय और मेवात के डेहरा गाँव के निवासी थे। संत चरनदास जी के दादा श्री प्रयागदास जी के श्यामदास जी और सुंदरदास जी दो भाई थे। श्यामदास जी का केशव नाम का एक पुत्र था। केशव जी अपनी पत्नी सहित 'डेहरा' में रहते थे। वे रिश्ते में संत चरनदास जी के चाचा जी थे।

कहते हैं कि चरनदास जी की प्रसिद्धि के बारे में सुनकर केशव जी अपनी पत्नी सहित उन्हें मिलने के लिए दिल्ली आये। जब वे दिल्ली से वापस जाने लगे तो संत चरनदास जी ने उन्हें प्रसाद दिया। उस प्रसाद

---

* डॉ. श्याम सुन्दर शुक्ल, *चरनदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य*, पृ. 569

को खाने के बाद केशव जी की पत्नी गर्भवती हो गयीं। उनके घर कन्या ने जन्म लिया। उन्होंने उसे चरनदास जी की दया का प्रमाण मानते हुए उसका नाम दयाबाई रख दिया।* दयाबाई का जन्म केशव जी के घर, मेवात के 'डेहरा' नामक गाँव में दूसर (भार्गव) परिवार में विक्रमी संवत् 1750 से 1785 के बीच हुआ माना जाता है। डॉ. श्याम सुंदर शुक्ल ने आपका जन्मकाल संवत् 1785 के आसपास माना है।

श्री जोगजीत जी *श्री लीला सागर* में लिखते हैं:

दूसर कुल में प्रगट भइ, दयाबाई सिरताज।
शरण लई गुरुमुख भई, कृपापात्र महाराज॥[1]

बचपन

विद्वानों का कथन है कि दयाबाई बचपन से ही भक्ति और शांति का साकार रूप थीं। अपनी आयु के बच्चों के स्वभाव के विपरीत उनकी रुचि खेल-तमाशों में नहीं थी और न ही उन्हें कपड़ों और आभूषणों का चाव था। वे अकसर अपनी माता से आश्चर्यजनक लहजे में कहतीं: मुझे पीले वस्त्रों वाले एक साधु के दर्शन होते हैं जिन्होंने सिर पर टोपी पहनी होती है। कभी वे मेरी ओर देखकर मुस्कराते हैं और कभी हाथ से इशारा करके मुझे अपनी ओर बुलाते हैं। वे मुझे बहुत प्यारे लगते हैं।

माता उत्तर देतीं: बेटी! वे पूर्ण संत चरनदास जी हैं। वे दिल्ली में रहते हैं। तेरा जन्म उनके आशीर्वाद से ही हुआ है। यह सुनकर दयाबाई उनके ध्यान में खो जातीं।

जब दयाबाई 11-12 साल की हुईं तो उन दिनों की परंपरा के अनुसार माता-पिता ने उनके विवाह के बारे में सोचना आरंभ कर दिया। दयाबाई जन्म से ही विरक्त स्वभाव की थीं। वे माता-पिता को कहतीं कि शादी करने में मेरी बिलकुल रुचि नहीं है। माता-पिता उसे समझाते

* डॉ. अविद्याबिहारी लाल कपूर, *राजस्थान के भक्त*, पृ. 376

कि विवाह से भक्ति में कोई विघ्न नहीं पड़ता। हम तेरी रुचि के अनुसार ही वर ढूँढ़ेंगे। दयाबाई बार-बार कहतीं कि मैं विवाह नहीं करना चाहती। माता-पिता इसे बच्चे की स्वाभाविक ज़िद समझकर इसकी ओर अधिक ध्यान दिये बिना उनके विवाह के लिए प्रयत्न करते रहे।

संत चरनदास से भेंट

दयाबाई की संत चरनदास से भेंट होने की दासतान भी उनके प्रभु के प्रति प्रेम का परिचय देती है। प्रभु के प्रेम में रँगी दयाबाई के मन में यह डर बैठ गया था कि विवाह से तो प्रभु की भक्ति में विघ्न पड़ेगा। इसलिये उनके हृदय में संत चरनदास जी के चरणों में पहुँचने की प्रबल तरंग उठने लगी, उनकी खोज में बेचैन दयाबाई ने एक सज्जन से संत चरनदास के विषय में पूछा, तो उसने उत्तर दिया: वे तो बहुत दूर दिल्ली में रहते हैं। मैं तुम्हें ऐसे घर में पहुँचा सकता हूँ जहाँ से तुम आसानी से संत चरनदास के पास पहुँच जाओगी। उस व्यक्ति के साथ दयाबाई कोट कासिम में अपनी बुआ रामाबाई के घर जा पहुँचीं। उस समय रामाबाई की बेटी अनूपीदेवी भी–जो सहजोबाई की माता थीं–वहाँ पहुँची हुई थीं।

संत चरनदास के प्रति दयाबाई की अपार भक्ति देखते हुए अनूपीदेवी बहुत हैरान और प्रसन्न हुईं। उन्होंने कहा–तू बहुत भाग्यशाली है। धन्य है तेरी भक्ति और धन्य है तेरा विश्वास। दयाबाई को अपने संग लेकर अनूपीदेवी दिल्ली में संत चरनदास के यहाँ पहुँच गईं।

अनूपीदेवी ने दयाबाई के पिता केशव को सारा समाचार लिख दिया और साथ ही उन्हें दिल्ली पहुँचने की विनती की। माता-पिता ने दिल्ली पहुँचकर दयाबाई को फिर से विवाह के लिए मनाने का प्रयत्न किया, परंतु दयाबाई ने मानो विवाह न करने का संकल्प कर लिया था। दयाबाई का दृढ़ निश्चय देखकर संत चरनदास जी ने उन्हें गुरुमंत्र की दात बख़्शकर अपनी शरण में ले लिया। दयाबाई ने माता-पिता के साथ घर वापस जाने से इनकार कर दिया और दिल्ली में सतगुरु के चरणों में रहना आरंभ कर दिया। बचपन से ही गुरुप्राप्ति की लगन अब गुरु की

शरण के रूप में प्रफुल्लित हो गयी, जिससे दयाबाई का जीवन विशुद्ध आध्यात्मिकता के साँचे में ढल गया। जोगजीत जी *श्री लीला सागर* में लिखते हैं:

बालापन में गुरु अपनाई। जग में पगन नेक नहिं पाई॥
हरि रंग में गुरु रंग दीनी। ज्ञान ध्यान में पूरण कीनी॥
प्रेमा परा भक्ति प्रगटाई। श्री हरि गुरु से लगन लगाई॥
सर्व सुलक्षण जगत उजागर। शील क्षमा जत सत की सागर॥[2]

सहजोबाई और दयाबाई दोनों ही संत चरनदास की परम सेविकाएँ थीं। उन्होंने अपने सतगुरु के उपदेश पर चलकर स्वयं भी परमपद प्राप्त किया और सतगुरु की आज्ञा से जगह-जगह यात्रा करके सतगुरु द्वारा चलायी परमार्थ की धारा को आगे बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। दयाबाई ने उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों पर जाकर संतमत का प्रचार किया। वे बहुत समय तक रवेल, कानपुर, बिठूर आदि स्थानों में रहकर सत्संग करती रहीं। इन स्थानों में आपके नाम से कई धार्मिक स्थान अस्तित्व में आये। दयाबाई की गद्दी से संबंधित सबसे प्रसिद्ध धार्मिक स्थान बिठूर में है, जहाँ आज भी दयाबाई को सम्मानपूर्वक याद किया जाता है।

बानी

दयाबाई की बानी दो भागों में है—*दयाबोध* और *विनय मालिका*। दयाबाई का ग्रंथ विक्रमी संवत् 1818 में पूर्ण हुआ। आपने दीनतापूर्वक कई स्थानों पर अपने आपको 'दया दास' भी कहा है।

चरनदास की कृपा तें मन में उपज्यो चेत।
दयाबोध बरनन कियो परमारथ के हेत॥

संबत ठारा सै समै पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवीं भयो ग्रंथ सुभ रीति॥[3]

हालाँकि दयाबाई की बानी विस्तृत नहीं है, फिर भी उनकी बानी में परमार्थ के प्रमुख पहलुओं पर सुंदर ढंग से प्रकाश डाला गया है। मुख्य रूप से इस बानी में परमात्मा, सतगुरु, नाम और प्रेम की महिमा का वर्णन है। इसके अलावा संसार की वास्तविकता, कर्म और कर्मफल के सिद्धांत आदि का भी संक्षिप्त, परंतु भावपूर्ण वर्णन किया गया है। आपकी बानी बहुत सरल, सरस और भावपूर्ण है। दयाबाई के हृदय की गहराई से प्रकट होनेवाले निर्मल भाव पाठक और श्रोता के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इनमें प्रेम और ज्ञान का जो सहज मिश्रण है, वह जितना अधिक रसमय है उतना ही कल्याणकारी भी है।

जोगजीत जी ने दयाबाई की महिमा इस प्रकार की है:

दयाबोध शुभ ग्रंथ बनायो। संत महन्तन के मन भायो॥
दोहा चौपाई की रचना। अमृतमई मनोहर वचना॥...
पढ़े सुने जो प्रेमी प्यारा। उपजे हिय आनँद अति भारा॥
सूक्षम वाणी अर्थ अपारा। वेद पुरान शास्त्र को सारा॥[4]

दयाबोध वाणी विदित, पढ़े प्रीत कर कोय।
श्री हरि गुरु की भक्ति दृढ़, तिन को प्रापत होय॥
जोगजीत कहाँ लों कहै, महिमा निज मुख गाय।
दया बोध वाणी अमल, गुण अनन्त अधिकाय॥[5]

जोगजीत जी ने दयाबाई की बानी को अमृत भरे मीठे वचन कहा है। ये वचन गूढ़ पारमार्थिक भावों से ओतप्रोत हैं। इनमें सभी धर्मग्रंथों के उपदेश का सार समाया हुआ है। दयाबाई की बानी प्रभु की भक्ति और स्तुति का वह निर्मल पारमार्थिक भंडार है जिसकी जितनी महिमा की जाये, कम है।

उपदेश

परमात्मा

दयाबाई की बानी का आधा भाग प्रभु की स्तुति पर आधारित है। उन्होंने '*विनय मालिका*' शीर्षक के अंतर्गत परमात्मा के एक सौ से भी अधिक नामों का उल्लेख किया है और प्रभु को सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सृष्टि का कर्ता, रक्षक और प्रतिपालक के रूप में चित्रित किया है।

भयमोचन अरु सर्बमय, ब्यापक अचल अखंड।
दयासिंधु भगवानजू, ताकै सिव ब्रह्मंड॥[1]

अजर अमर अबिगत अमित, अनुभय अलख अभेव।
अबिनासी आनन्दमय, अभय सो आनन्द देव॥...
नि:कलंक नरसिंघ जू, निरजन अलख अभेव।
निराकार निरभय मगन, नारायन नित-देव॥[2]

चेतन रूपी आतमा बसै पिंड ब्रह्मंड।
ना करता ना भोगता अद्वै अचल अखंड॥[3]

प्रभु अचल, अखंड और सर्वव्यापक है। वह अविनाशी प्रभु दया का सागर है, सृष्टि का स्वामी है और भवसागर के भय का नाश करनेवाला है।

सारा ब्रह्मांड कल्याण के लिए उसी की ओर देखता है। वह अलख, अगम और असीम है। वह आनंदरूप है। प्रभु अनुभव का विषय है, वर्णन का नहीं। वह निष्कलंक है, परम पुरुष है, माया से निर्लिप्त और अलख है, उसका भेद नहीं पाया जा सकता। वह निराकार, निर्भय और आनंदमय है। केवल वही पूजनीय है। परमात्मा की चेतन अंश आत्मा भी पूरे ब्रह्मांड में समायी हुई है, वह परमात्मा की तरह ही अद्वैत, अखण्ड और अविनाशी है।

सर्वव्यापक

वही एक ब्यापक सकल ज्यों मनिका में डोर।
थिर चर कीट पतंग में 'दया' न दूजो और॥[4]

घट मठादि में रम रह्यो रमता राम जु होय।
ज्ञान दृष्टि सूँ देखिये है अकासवत सोय।[5]

प्रभु सर्वव्यापक है। मनुष्यों में ही नहीं, बल्कि पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों में भी उसी का नूर समाया हुआ है। वह घट-घट में रमा हुआ है। इसी लिए उसको राम कहा जाता है। वह आकाश के समान सर्वव्यापक है, पर माया के परदे के पीछे छिपा हुआ है। उसके दर्शन करने के लिए ध्यान को अंदर स्थिर करके ज्ञानदृष्टि यानी दिव्यदृष्टि जाग्रत करने की आवश्यकता है।

जीव ब्रह्म आँतर नहिं कोय। एकै रूप सर्ब घट सोय॥
जग बिबर्त सूँ न्यारा जान। परम अद्वैव स्वरूप रूप निर्बान॥
बिमल रूप ब्यापक सब ठाँई। अरध उरध मधि रहत गुसाँई॥
महा सुद्ध साच्छी चिद्रूप। परमातम प्रभु परम अनूप॥
निराकार निरगुन निरबासी। आदि निरंजन अज अबिनासी॥[6]

जीव के अस्तित्व का आधार शरीर नहीं, आत्मा है। आत्मा परमात्मा का ही रूप है। इसलिये जीव और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। इसी तथ्य को आधार बनाकर आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद के सिद्धांत में भी 'विवर्तवाद' का उल्लेख किया है। इसके अनुसार यह सारा जग उस प्रभु की रचना है, अर्थात् प्रभु और उसकी रचना अभेद है। प्रभु को इस रचना से न्यारा समझ लेना द्वैत भाव अर्थात् अज्ञानता है। जब इस भ्रम का नाश हो जाता है तो द्वैत का भी नाश हो जाता है। फिर अनेकता पूर्ण एकता में सिमट जाती है और सबकुछ एक निर्गुण, निराकार, निरंजन का ही रूप प्रतीत होता है। दयाबाई कहती हैं: परमात्मा निर्मल और अविनाशी है, वह माया से पूरी तरह मुक्त है। वह ज्ञानरूप है। उसका अनुपम रूप वर्णन से परे है।

प्रभु दयालु है

जीव का कल्याण प्रभु के प्रेमरूप और दयारूप होने में है। वह बख़्शिद दयालु, जीव के अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देता। वह जीव के अनगिनत पापों का नाश करके उसे आवागमन के चक्र से मुक्त करके अपने साथ मिलाप का सौभाग्य प्रदान करता है। दयाबाई निर्बल और अज्ञानी जीवों की ओर से प्रार्थना करती हैं:

चौरासी चरखान को, दु:ख सहो नहिं जाय।
दयादास तातें लई, सरन तिहारी आय॥
कर्म फाँस छूटै नहीं, थकित भयो बल मोर।
अब की बेर उबारि लो, ठाकुर बन्दीछोर॥[7]

हे दयालु! चार खानियों और चौरासी लाख योनियों का दु:ख असहनीय हो गया है। हम कर्मों के फंदे में फँसे हुए हैं। अपने बल से हम कर्मों के जाल से नहीं छूट सकते। इसलिये इन दु:खों से मुक्ति पाने

के लिये हम तुम्हारी शरण में आ गये हैं। हे बंधनमुक्त करनेवाले ठाकुर! अपनी दया से इस बार हमें कर्म जाल से छुड़वा लो।

भवजल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूँ पार।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारम्बार॥
पैरत थाको हे प्रभू, सूझत वार न पार।
मेहर मौज जब हीं करो, तब पाऊँ दरबार॥
कर्म रूप दरियाव से, लीजै मोहिं बचाय।
चरन कमल तर राखिये, मेहर जहाज चढ़ाय॥[8]

हम निर्बल जीवों की ओर से विनती करती हुई आप कहती हैं: हे प्रभु! हम इस भवसागर में ग़ोते खाते-खाते थक गये हैं। अपने बल पर इस भयंकर भवसागर को पार कर पाने की सामर्थ्य हम में नहीं है। न हमें इसके अगले किनारे का पता है, न पिछले का। अनेक जन्मों से हम कर्मरूपी समुद्र में ग़ोते खा रहे हैं। तुम्हारी दया और हुक्म से ही अब तुम्हारे पास पहुँच सकते हैं। इसलिए तुम अपने चरणकमलों का सहारा दो और अपनी दया के जहाज़ पर चढ़ाकर कर्मों के बंधन से हमारा छुटकारा कर दो।

निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
मेरे तुम हीं नाथ इक, जीवन प्रान अधार॥
काहू बल अप देह को, काहू राजहि मान।
मोहिं भरोसो तेरही, दीनबन्धु भगवान॥
हौं गरीब सुन गोबिंदा, तुही गरीब-निवाज।
दयादास आधीन के, सदा सुधारन काज॥
हौ अनाथ के नाथ तुम, नेक निहारो मोहि।
दयादास तन हे प्रभू, लहर मेहर की होहि॥[9]

हे प्रभु! आप अनाथों के नाथ हैं, बेसहारों का सहारा हैं। आप दीनों और निर्बलों का बल हैं। आप सब जीवों के मालिक और रक्षक हैं। आप सबके जीवन और प्राणों के आधार हैं। आप बिगड़े हुए कार्य सँवारनेवाले हैं। हे ग़रीबनवाज़! अपनी दया की लहर द्वारा मेरा उद्धार कर दें।

नर देही दीन्हीं जबै, कीन्हो कोटि करार।
भक्ति कबूली आदि में, जग में भयो लबार॥
कछू दोष तुम्हरो नहीं, हमरी है तकसीर।
बीचहिं बीच बिबस भयो, पाँच पचीस के भीर॥
ऐंचा खैंची करत हैं, अपनी अपनी ओर।
अब की बेर उबार लो, त्रिभुवन बंदी-छोर॥[10]

हे प्रभु! मैंने माता के गर्भ में आपसे बार-बार यह वायदा किया था कि मनुष्य-जन्म में साँस-साँस तुम्हारी भक्ति करूँगा। लेकिन इस संसार में आकर पाँच विकारों और पच्चीस प्रकृतियों के वशीभूत होकर मैंने वह वायदा भुला दिया। विषय-विकारों की प्रबल लहरों के आगे अब मैं बिलकुल विवश हूँ। मैं कुछ भी करने योग्य नहीं हूँ। आप संपूर्ण त्रिलोकी का उद्धार करनेवाले हैं। अपनी कृपा द्वारा इस बार मुझे भी उबार लें।

जेते करम हैं पाप के, मोसे बचे न एक।
मेरी ओर लखो कहा, बिर्द बानो तन देख॥[11]

हे प्रभु! ऐसा कोई पाप नहीं है जो मैंने न किया हो। आप मेरे पापों की ओर न देखें। आपका स्वभाव पापियों का उद्धार करना है। अपने बिरद की लाज रखते हुए मुझे बख़्श दें।

अधम उधारन बिरद सुन, निडर रह्यों मन माँहिं।
बिर्द बानो की हार देव, की तारो गहि बाँहि॥

असंख जीव तरि तरि गये, लै लै तुम्हरो नाम।
अब की बेरी बाप जी, परो मुगध से काम॥
जो जाकी ताकै सरन, ताको ताहि खभार।
तुम सब जानत नाथ जू, कहा कहौं बिस्तार॥[12]

जीव विनती करता है: हे अंतर्यामी प्रभु! हमने आपकी महिमा सुनी है कि आप पतितों का उद्धार करनेवाले हैं। इसलिए मैं निडर हो गया। आपने अनगिनत जीवों का उद्धार किया है, परंतु आपका मुझ जैसे मूढ़, अज्ञानी के साथ कभी वास्ता नहीं पड़ा होगा। शरण में आये की रक्षा और सँभाल करना स्वामी का कर्तव्य होता है। हे प्रभु! अब आपके सामने दो ही रास्ते हैं—या तो हार मान लो कि यह आपकी मर्यादा (बिरद) नहीं है या फिर मेरी बाँह पकड़कर मेरा उद्धार कर दें!

पूजा अरचन बंदगी, नहिं सुमिरन नहिं ध्यान।
प्रभुजी अब राखे बने, बिर्द बाने की कान॥
नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ ब्रत दान।
मात भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान॥
लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहिं देह।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन दिन दूनों नेह॥[13]

हे प्रभु! न मैंने भजन-सुमिरन किया है, न आपका ध्यान किया है, न साधना द्वारा इंद्रियों को वश में किया और न ही तीर्थ-व्रत, दान आदि शुभ कर्म किया। अब तो अपने बिरद की लाज रखें और मेरी रक्षा करें। अज्ञानी बालक माता पर विश्वास रखता हुआ अनेक भूलें करता है। माता उसके अवगुण अनदेखे करके उसका पालन पोषण करती है और उसे गोद में लेकर लाड़-प्यार करती है। इस अज्ञानी बालक की भूलें क्षमा करके आप भी इसका उद्धार कर दें।

सदन कसाई देखि कै, को नहिं देत बड़ाइ।
बड़े बिरछ की छाँह में, को नहिं बिलमत आइ॥
धूप हरै छाया करै, भोजन को फल देत।
सरनाये की करत है, सब काहू पर हेत॥
कलप बृच्छ के निकट हीं, सकल कल्पना जाय।
दयादास तातें लई, सरन तिहारी आय॥[14]

मेरे दाता! वृक्ष पुण्यात्मा और पापात्मा को समान रूप से छाया भी देता है और फल भी, परंतु जो कोई कल्पवृक्ष के पास पहुँच जाता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। शरण में आये सदना जैसे कसाई का उद्धार कर देना आपके स्वभाव के अनुकूल ही था। मैं भी इसी आशा से आपकी शरण में आयी हूँ कि आप मेरे पापों और अवगुणों के बावजूद मेरी लाज ज़रूर रखेंगे।

देह धरौं संसार में, तेरो कहि सब कोय।
हाँसी होय तौ तेरिही, मेरी कछू न होय॥
जो नहिं अधम उधारनो, तौ नहिं गहते फेंट।
बिर्द की पैज सम्हारि लो, सकल चूक को मेट॥
जो मेरे करमन लखो, तौ नहिं होत उबार।
दयादास पर दया करि, दीजै चूक बिसार॥
चकई कल में होत है, भान उदय आनन्द।
दयादास के दृगन तें, पल न टरो ब्रज-चंद॥
हौं अनाथ तोहिं बिनय करि, भय सों करूँ पुकार।
दयादास तन हेर प्रभु, अब के पार उतार॥[15]

मेरे स्वामी! जबसे मैं शरीर धारण करके संसार में आयी हूँ, सबको पता चल गया है कि मैं आपकी दासी हूँ। यदि आप इस दासी की लाज

नहीं रखेंगे तो मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन आपके नाम पर लोग अवश्य हँसेंगे। आपने यदि मुझ जैसे पापी का उद्धार नहीं करना था तो मेरी बाँह ही न पकड़ते। यदि मेरे कर्मों की तरफ़ देखेंगे तो मेरा उद्धार किसी हालत में नहीं हो सकता। मेरे सभी पाप और अपराध अनदेखे करके आप ही मेरा उद्धार कर सकते हैं। जैसे सूर्य के उदय होते ही चकवी के सब दु:ख दूर हो जाते हैं और वह आनंदविभोर हो उठती है, उसी प्रकार हे प्रभु! आपका प्रकाश पलभर के लिए भी मेरी आँखों से दूर न हो। मेरा रोम-रोम भय से काँप रहा है। दया करके मेरा उद्धार करें। यही भाव सहजोबाई ने भी प्रकट किया है:

'कर्म बिचारौ तौ नहीं छूटौं, जो छूटौं तौ दया तुम्हारी।'[16]

मलयागिर के निकट हीं, सब चंदन हो जात।
छूटै करम कुबासना, महा सुगँध महकात॥
लोहा पारस के निकट, कंचन ही सो होय।
जितना चाहै लै करै, लोहा कहै न कोय॥
जैसे सूरज के उदय, सकल तिमिर नस जाय।
मेहर तुम्हारी हे प्रभू, क्यों अज्ञान रहाय॥
अनंत भानु तुम्हरी मेहर, कृपा करो जब होय।
दयादास सूझै अगम, दिब्य दृष्टि तन होय॥[17]

चंदन के पास उगे अन्य वृक्षों से भी चंदन की सुगंध आने लगती है। आपकी शरण से मेरे सभी अवगुण दूर हो जायेंगे और मैं गुणों का भंडार बन जाऊँगी। जैसे पारस के स्पर्श से लोहा, सोना बन जाता है, फिर उसे लोहा नहीं कहा जा सकता, वैसे ही आपके कृपारूपी पारस के स्पर्श से मेरा कायाकल्प हो जायेगा। सूर्य के उदय होते ही अंधकार का नाश हो जाता है। हे ज्योतिस्वरूप प्रभु! आप ऐसी मेहर कर दें ताकि अज्ञानता का अंधकार दूर हो जाये। तुम्हारी दया से दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाने पर

मेरे अंतर में अनंत सूर्यों का प्रकाश हो जायेगा और मुझे उस अगम धाम का ज्ञान हो जायेगा।

तीन लोक में हे प्रभू, तुम हीं करो सो होय।
सुर नर मुनि गंधर्ब जे, मेटि सकैं नहिं कोय॥
बेर बेर चूकत गयों, दीजै गुसा बिसार।
मिहरबान होइ रावरे, मेरी ओर निहार॥[18]

हे प्रभु! संपूर्ण त्रिलोकी में जो कुछ भी होता है, आपकी रज़ा से होता है। साधारण मनुष्य की तो क्या सामर्थ्य है, ऋषि-मुनि, देवता और स्वर्गों के गवैये गंधर्व भी आपके किये को नहीं मिटा सकते। जब केवल आपने ही मेरा उद्धार करना है तो देरी क्यों कर रहे हैं? मैं पहले भी अनेक बार आपकी दया पाने से चूक गयी हूँ। अब तो मेरे कुकर्मों को अनदेखा करते हुए शरणागत की लाज रख लें और मेरा उद्धार कर दें।

दया दीन पर करत हौ, सो किमि लेखी जाहि।
बेद बिरद बोलत फिरै, तीन लोक के माहिं॥
बज्रै तिनका करत हौ, तिनकै बज्र बनाय।
मेहर तुम्हारी हे प्रभू, सागर गिरि उतराय॥
बड़े बड़े पापी अधम, तारत लगी न बार।
पूँजी लगै कछु नंद की, हे प्रभू हमरी बार॥
सीस नवै तौ तुमहिं कूँ, तुमहिं सुँ भाखूँ दीन।
जो झगरौं तौ तुमहिं सूँ, तुम चरनन आधीन॥
और नजर आवै नहीं, रंक राव का साह।
चिरहटा के पंख ज्यों, थोथो काम देखाह॥[19]

वेदों-शास्त्रों में आपकी महिमा प्रकट की गई है। तीनों लोकों में भी इसी बात का डंका बज रहा है कि आप दीनों पर दया करनेवाले हैं।

आप तिनके को वज्र और वज्र को तिनका बना सकते हैं। आपकी मेहर हो जाये तो सागर में पर्वत तैरने लगें। हे प्रभु! आप पहले भी अनेक अधम और पापियों का उद्धार कर चुके हैं, फिर अब जब मेरा उद्धार करने की बारी आयी, तो क्या आपकी कोई पूँजी लग जायेगी? वेदों में आपको पतितों का उद्धार करनेवाला कहा गया है। यह कथन तभी सत्य माना जायेगा, यदि आप मेरे जैसी तुच्छ का उद्धार कर देंगे। हे प्रभु! मेरा आपके सिवाय कोई सहारा नहीं। इसलिए मैंने आपके आगे ही शीश झुकाना है, गिला-शिकवा और झगड़ा भी आपसे ही करना है। संसार में आपके सिवाय कोई दूसरा दाता नहीं। आप राजा और रंक दोनों के स्वामी हैं। मेरे लिये सारी दुनिया उसी तरह व्यर्थ है, जैसे बहेलिये के लिये पक्षी के पंख किसी काम के नहीं होते।

तेरी दिस आसा लगी, भ्रमत फिरौं सब दीप।
स्वाँती मिलै सनाथ हो, जैसे चातृक सीप॥
चित चातृक रटना लगी, स्वाँती बूँद की आस।
दया-सिंध भगवान जू, पुजवौ अब की आस॥
तुमहीं सूँ टेका लगौ, जैसे चन्द्र चकोर।
अब कासूँ झंखा करौं, मोहन नन्दकिसोर॥
स्याम घटा घन देखि कै, बोलत गहगह मोर।
ब्रजबासी तिमि जी उठैं, चितवत हरि की ओर॥
कब को टेरत दीन भो, सुनौ न नाथ पुकार।
की सरवन ऊँचौ सुनो, की बिर्द दियो बिसार॥[20]

प्रेमिका को अपने प्रियतम पर मान होता है। वह प्रेमवश उसके साथ अनेक गिले-शिकवे भी करती है। ये उच्च स्तर के प्रेम और विश्वास की निशानी है। प्रभु के प्रेम में रँगी हुई दयाबाई भी कहती हैं कि स्वाति बूँद के बिना पपीहे को शांति नहीं मिलती और यही दशा सीप की होती है। चकोर को चाँद के बिना धैर्य नहीं मिलता। जिस प्रकार काली घटाएँ

देखकर मोर प्रसन्नता से नाचता और गाता है तथा ब्रज के लोग श्रीकृष्ण को देखकर जी उठते थे, उसी प्रकार हे प्रभु! मैं दीनहीन भी चिरकाल से पपीहे की तरह आपकी दया के लिए पुकार कर रही हूँ। क्या आपको मेरी पुकार सुनायी नहीं दे रही या फिर आपने पापियों का उद्धार करने का अपना स्वभाव बदल लिया है?

प्रभु की दया के दृष्टांत

दयाबाई ने इतिहास, महाभारत तथा पुराणों से प्रभु की अनूठी दया-मेहर के बहुत से दृष्टांत दिये हैं। वे इनका उल्लेख करते हुए प्रभु से निवेदन करती हैं कि जब आप पहले ही बड़े से बड़े पापियों, अपराधियों और पतितों का उद्धार कर चुके हैं तो मेरे लिए देरी क्यों कर रहे हैं?

हाथी बूड़ो सूँड़ लों, जब हीं करी पुकार।
ग्राहतें आन छुड़ाइया, लगी न रंचक बार॥
टेर सुनी प्रहलाद की, नरसिंह हो बनि आय।
हिरनाकुस को मारि कै, जन को लीन बचाय॥
सकल मेघ लै इन्द्र जब, ब्रज पै बरसो आये।
गोबरधन नख पै धरो, सब ब्रज लियो बचाय॥
हरी हरी कहि द्रोपदी, बाढ़ो चीर अपार।
लज्जा राखी सभा में, दूसासन गयो हार॥
बिप्र सुदामा बापुरो, कियो छिनक में भूप।
कंचन महल रतन जड़े, बिस्नुपुरी के रूप॥[21]

हे प्रभु! जब मगरमच्छ की पकड़ में आये हाथी ने पुकार की, तो आपने पलभर में उसको मगरमच्छ से छुड़वा दिया। भक्त प्रह्लाद ने पुकार की, तो आपने नरसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का वध करके उसकी रक्षा की। जब इंद्र ने अपने सभी मेघों को ब्रज पर मूसलाधार बरसाया, तो आपने गोवर्धन पर्वत को अपनी अँगुली पर

उठाकर ब्रजवासियों की रक्षा की। जब दु:शासन ने द्रौपदी का चीरहरण करने का प्रयत्न किया, तो आपने द्रौपदी की पुकार सुनकर उसकी लाज रखी। आपने अपनी दया से निर्धन सुदामा को राजा के समान धनवान् बना दिया। उसकी झोंपड़ी को मोतियों से जड़े सोने के महल में बदल दिया, जिसकी शान विष्णुपुरी के भवनों से कम नहीं थी।

धना जाट ने रेत बइ, गोहूँ दियो लुटाय।
मौजें श्रीगोपाल की, हरी न खेत समाय॥
नामदेव की गाय प्रभु, दीन्ही जबै जियाय।
पानी तें पैदा कियो, कहो कठिनता क्याय॥
पीपा गिरो समुद्र में, डूबन लगो सरीर।
किरपा करि दरसन दियो, मेटी तन की पीर॥
मुगधन कीन्ही मसकरी, सब पुर न्यौत बुलाय।
द्वारे जबै कबीर के, बरदी दई डराय॥[22]

धन्ना जाट ने पिता का दिया हुआ गेहूँ का बीज साधुओं में बाँट दिया और खेत में रेत बो दी। प्रभु की कृपा से रेत ही गेहूँ के बीज में बदल गयी और खेत हरी भरी फसल से भर गया।

मुग़ल बादशाह ने नामदेव जी को कहा: या तो मेरी मरी हुई गाय जीवित कर दो या मुसलमान बन जाओ। आपने दया करके मृतक गाय जीवित करके अपने भक्त की लाज रखी। आपने समुद्र में डूब रहे भक्त पीपा को बचा लिया।

कुछ लोग कबीर साहिब से ईर्ष्या करते थे। उनको अपमानित करने के लिये उन लोगों ने शहर में यह बात फैला दी कि आज कबीर के घर में अन्न बाँटा जायेगा। सारा शहर कबीर साहिब के घर जा पहुँचा। प्रभु की ऐसी लीला हुई कि उनके घर के आगे अनाज का विशाल ढेर लग गया। सब लोग दंग रह गये और संतुष्ट होकर 'धन्य कबीर, धन्य कबीर' कहते हुए उनके घर से वापस आये।

भेंटो जब रैदास कूँ, लीन्हो भुजा पसार।
हरि लीला रीझै नहीं, अचरज कहो अपार॥
बधिक कर्म नित करत थे, सो कीन्हो ऋषिराय।
रामायन सत कोटि सों, महिमा कही न जाय॥
सुरा पान अम्बुक भखै, नित्त कर्म बिभिचार।
अजामील से अधम कूँ, तारत लगी न बार॥
सेवरी जाति असौच अति, करी ऋषिन सिरताज।
फल खाये अति प्रीति सूँ, महिमा रही बिराज॥[23]

इस प्रसंग में पहली साखी गुरु रैदास जी के बारे में है। दूसरी साखी उस महात्मा के बारे में है जो एक डाकू थे और लूटमार का काम करते थे। बाद में वे एक महान् ऋषि बन गये। उनके द्वारा रचित रामायण की महिमा अपरंपार है। तीसरी साखी अधम गति वाले अजामिल की है जो हर प्रकार के विकारों में बुरी तरह लिप्त था, परंतु बाद में महात्मा बन गया। चौथी साखी शबरी के बारे में है, उसकी प्रेमाभक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् राम उसकी कुटिया में गये और उसके जूठे बेर खाकर उसे ऋषियों का सिरताज बना दिया।

करमा तेलिन बावरी, जा पर भये उदार।
पहिल थार जा को चढ़ै, राख्यो जिन दरबार॥
सदन कसाई पै जबै, दया करी गोपाल।
तारत लागी बार नहिं, छूट गयो भ्रम जाल॥
सेन भगत को आप हरि, संसय कीन्हो दूर।
मेहरबान ह्वै दरस दिय, राखे निकट हजुर॥
कुटिल कर्म कर आइती, कुच सों बिष लपटाय।
ता को तारौ छिनक में, सब औगुन बिसराय॥
लोनी भाजी बिदुर की, पाई प्रीति लगाय।
दुरजोधन से भूप को, दीन्हो गर्ब घटाय॥[24]

कर्माबाई बहुत ग़रीब तेलिन थी। प्रभु उस पर दयालु थे। वह सुबह-सवेरे बिना स्नान किये प्रेमपूर्वक जो खिचड़ी भेंट करती, उसे जगन्नाथ जी प्रसन्न होकर खा लेते। परंतु अन्य लोगों के द्वारा भोग के लिये चढ़ाये गये पकवान के थाल ज्यों के त्यों रखे रह जाते थे।

सदना कसाई था, परंतु उसका उद्धार करने में प्रभु ने क्षणभर की देर नहीं लगायी। भक्त सेन प्रतिदिन राजा की हजामत बनाते थे। एक दिन प्रभु के ध्यान में मग्न होने के कारण आप राजा की हजामत बनाने न जा सके। प्रभु स्वयं सेन जी का भेष धारण करके राजा की हजामत बनाने गये, सेन जी धन्य हो गये।

प्रभु ने कुटिल कर्म करनेवाली पूतना राक्षसी के सभी अवगुणों और पापों को अनदेखा करके उसका उद्धार कर दिया। आपने विदुर का रूखा-सूखा भोजन खाना पसंद किया, परंतु अहंकारी दुर्योधन का अहंकार तोड़ने के लिए उसके छत्तीस प्रकार के पकवान स्वीकार नहीं किये।

नरसी महता हेत प्रभु, माढ़ी आय दुकान।
स्यामल सेठ कहाइया, दीनबन्धु भगवान॥
जमला अर्जुन बृक्ष सो, तट जमुना के तीर।
तारत बार लगी नहीं, दया सिंधु बलबीर॥
राजा नृग सो कूप में, गिरगिट हो बिलखाय।
स्राप फाँस ते काढ़ि कै, तार दिया जदुराय॥
बिद्याधर अजगर महा, आयो निकट बनाय।
बिद्या देह नई भई, सुर पुर दियो पहुँचाय॥
गनिका कामिन आगरी, सो तारी छिन माहिं।
दयादास की दयाल जू, आन गहो अब बाहिं॥
सनमुख होत बिभीषनै, लंक दई बकसीस।
दासहिं द्रोही जानि कै, रज मिलाय दससीस॥[25]

गुजरात के नरसी भक्त दान देते-देते कंगाल हो गये। कुछ साधुओं ने उनसे द्वारिका जाने के लिए धन माँगा। आपने 'सांवलशाह' के नाम हुंडी लिखकर साधुओं को दे दी। भगवान् ने उस साहूकार का रूप धारण करके नरसी की हुंडी का भुगतान किया।

पुराणों में कथा है कि एक बार कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव मदिरा के नशे में चूर, नदी में स्नान करते हुए अपनी स्त्रियों के साथ अठखेलियाँ कर रहे थे। अचानक वहाँ नारद मुनि आ गये, लेकिन उन दोनों ने नारद जी का सत्कार करने के बजाय उनकी उपेक्षा की। ऐसे जड़बुद्धि व्यवहार से अपने को अपमानित होते देखकर नारद जी ने उन्हें शाप दे दिया कि जैसी आपकी जड़बुद्धि है, उसी के अनुसार आपका जन्म होगा। फलस्वरूप वे दोनों यमल और अर्जुन वृक्ष के रूप में पैदा हुए।

एक बार भगवान् कृष्ण की माता जी ने उनकी शरारतों से तंग आकर उनको ओखली के साथ बाँध दिया। आप ओखली को घसीटते हुए बाहर ले गये। वह ओखली दो वृक्षों के बीच में फँस गयी। आपने ऐसा झटका लगाया कि दोनों वृक्ष जड़ से उखड़ गये और उनका उद्धार हो गया।

राजा नृग प्रतिदिन एक लाख गाय दान में दिया करता था। एक बार पहले दान में दी गयी एक गाय राजा द्वारा दान में दी जानेवाली गायों में मिल गयी। राजा ने वह गाय एक अन्य ब्राह्मण को दान कर दी। एक ब्राह्मण कहता कि गाय मेरी है, दूसरा कहता कि गाय मेरी है। दोनों ब्राह्मणों ने राजा के दरबार में पेश होकर अपनी-अपनी बात कही। राजा ने पहले की बात सुनकर उसके पक्ष में सिर हिला दिया और दूसरे की बात सुनकर उसके लिए भी सिर हिला दिया। ब्राह्मणों ने शाप दिया कि तू तो गिरगिट की तरह रंग बदल रहा है, इसलिए गिरगिट बनेगा। राजा को गिरगिट की योनि मिली और वह एक अंधे कुएँ में पड़ा रहा। भगवान् कृष्ण ने उसका उद्धार किया।

राजा सुदर्शन अंगिरा ऋषि के शाप से सर्प की योनि में चला गया। एक बार जब नंद जी कृष्ण जी को लेकर कहीं जा रहे थे तो अजगर ने

नंद जी का पाँव मुँह में दबोच लिया। नंद जी ने शोर मचाया तो भगवान् कृष्ण ने अपने चरण छुआकर अजगर का उद्धार कर दिया।

गणिका (वेश्या) का राम-नाम के जाप द्वारा उद्धार हो गया। भगवान् राम ने अपनी शरण में आये विभीषण की लाज रख ली। आपने रावण को मारकर विभीषण को लंका का राज्य दे दिया।

माधव दासहिं दुखित लखि, दया कीन जगदीस।
तन की बाधा मेटि कै, दई भक्ति बकसीस॥
रज परतहिं पाहन तरी, गौतम ऋषि की नार।
कृपा-सिंधु महराज की, लीला अपरम्पार॥
ऊँचो आसन ध्रू को, महा अटल कर दीन।
सुर प्रदच्छिना देत हैं, जुग जुग जस परबीन॥
काम हेतु पैरो हतो, गंगा स्यामी रात।
सो तुलसी तुलसी करो, महिमा कही न जात॥
बिष को प्याला घोर कै, राना भेजो छान।
मीरा अचयो राम कहि, हो गयो सुधा समान॥
श्री सुक मुनि महाराज की, महिमा कही न जाय।
पतित तरन को भागवत, रची जहाज बनाय॥
चरनदास जुगतानन्द स्वामी, दोउ पुरुषन के भूप।
परम सनेही नाम के, हो गये बिमल सरूप॥
और बहुत जुग चार के, कहँ लग कहौं बखान।
मेहर तुम्हारिहि से प्रभू, पावत पद निर्बान॥[26]

भगवान् जगन्नाथ जी के एक प्रेमी पुजारी माधवदास जी थे, जिन्हें कोई गंभीर बीमारी हो गयी थी। इसलिये कुछ पुजारी लोग उन्हें मंदिर से दूर समुद्र के किनारे छोड़ आये। रात को जब माधवदास जी को सर्दी लगी तो जगन्नाथ जी अपना पीतांबर उन्हें ओढ़ा आये और उन्हें निरोग कर दिया। सुबह वह पीतांबर मूर्ति पर न पाकर उसकी खोज शुरू हुई,

उसे माधवदास के तन पर पाकर पुजारियों को उनकी महिमा का ज्ञान हुआ और वे उन्हें सम्मानपूर्वक मंदिर में ले आये। तब से माधवदास की भक्ति भावना भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी।

गौतम ऋषि के शाप से पत्थर बन चुकी अहल्या का भगवान् राम के चरण स्पर्श से उद्धार हो गया। प्रभु की दया से भक्त ध्रुव को तारों में इतना ऊँचा स्थान प्राप्त है कि देवता भी उसकी परिक्रमा करते हैं।

तुलसीदास जी को अपनी पत्नी से बहुत प्रेम था। एक बार उनकी पत्नी मायके गयी हुई थी। मायके जानेवाले मार्ग में दरिया पड़ता था। आप उसके प्रेम में इतने मस्त थे कि एक मुर्दे के सहारे दरिया पार करके ससुराल जा पहुँचे। रात का समय था। घर का दरवाज़ा बंद था। आप दीवार के साथ लटक रहे सर्प को रस्सी समझकर उसके सहारे ऊपर चढ़ गये। जब पत्नी को सारी बात बतायी तो वह कहने लगी: यदि इतना प्रेम प्रभु से करते तो आपका उद्धार हो जाता। ये वचन तुलसीदास जी के हृदय में घर कर गये। वे उसी दिन से प्रभुभक्ति में लीन हो गये। इस भक्ति से उनको परमपद की प्राप्ति हुई। उन्होंने लोक कल्याण की भावना से 'रामचरितमानस' की रचना की, जो आध्यात्मिक ज्ञान का अनुपम एवं अमूल्य भंडार है।

मेवाड़ के राजा को मीराबाई की अपने गुरु रविदास से संगति पसंद नहीं थी। एक बार राजा ने प्याले में विष घोलकर इसको चरणामृत का नाम देकर मीरा के पास भेज दिया। मीरा प्रभु का ध्यान करके विष का प्याला पी गयी। प्रभु की कृपा से विष ने अमृत का रूप धारण कर लिया।

शुकदेव के पिता ऋषि वेदव्यास जी ने प्रभु की कृपा से पापियों के उद्धार के लिए *श्रीमद्भागवत (भागवत पुराण)* की रचना कर दी। सतगुरु चरनदास जी और उनके प्रमुख शिष्य जुगतानन्द जी जैसे भक्तों को भी आपके नाम के सहारे परमपद की प्राप्ति हो गयी।

दयाबाई कहती हैं: मैंने ऊपर कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिनका आपकी दया-मेहर से उद्धार हुआ। उनके अतिरिक्त

चारों युगों में अनगिनत लोग आपकी कृपा से परमपद के अधिकारी बन गये। उन सबका वर्णन कर पाना असंभव है।

दयाबाई अनेक दृष्टांत प्रस्तुत करके जीव के अंदर यह विश्वास जगाना चाहती हैं कि उसे न तो अपने पूर्व पापकर्मों से घबराना चाहिये और न ही अपनी वर्तमान दयनीय अवस्था के कारण हताश होना चाहिये। उसको हर अवस्था में प्रभु की अपार सामर्थ्य और दया में विश्वास करना चाहिये। प्रभु पतित से पतित व्यक्ति का उद्धार कर देते हैं और वह ग़रीबों, दीन-हीनों, बेसहारों पर भी दया की बौछार करने के लिए तैयार रहते हैं। इसलिये जीव को हर प्रकार की कठिनाई में प्रभु से ही दया की आशा रखनी चाहिये। जीव का संकट चाहे कितना भी बड़ा हो, फिर भी प्रभु की दया के सामने वह दु:ख तुच्छ या नगण्य होता है। जीव को चाहिये कि अन्य सभी सहारे त्यागकर दृढ़तापूर्वक प्रभु की शरण ग्रहण करे और सच्चे दिल से प्रभु से दया की भिक्षा माँगे। उसकी विनती व्यर्थ नहीं जायेगी।

दया का साधन – परमात्मा का नाम

तातें तेरे नाम की, महिमा अपरम्पार।
जैसे किनका अनल को, सघन बनै दे जार॥
जोग जग्य जप तप बरत, तीरथ नेम अचार।
चार बेद षट सास्त्र प्रभु, तुम किरपा की लार॥
कृपा नाम के निकट हीं, नाम सतगुरन पास।
दयादास के हृदय में, हरि गुरु करो निवास॥
चन्द्रायन एकादसी, और बरत आचार।
दयादास देखे सबै, तुम किरपा की लार॥
तीरथ अठसठ सास्त्र बिधि, जो अन्हाय फल होय।
दयादास तुम कृपा की, सहज निकट है सोय॥[27]

इतिहास और पौराणिक कथाओं में से प्रभु की दया के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करने के बाद दयाबाई उस साधन का उल्लेख करती हैं,

जिसके द्वारा प्रभु की शरण में आये जीवों का भवसागर से उद्धार हुआ। वे कहती हैं: हे प्रभु! आप जिसका उद्धार करते हैं, अपने दिव्य नाम द्वारा करते हैं। जिस तरह अग्नि की एक चिंगारी सारे जंगल को जलाकर राख कर देती है, उसी तरह आपका नाम अनगिनत पापों के ढेर को नष्ट कर देता है। जप-तप, योग-यज्ञ, तीर्थ-व्रत, चार वेदों, छ: दशर्नों का पाठ-विचार आदि का फल आपकी कृपा में ही समाया है। आपकी कृपा की वास्तविक निशानी आपका नाम है और नाम की दात सतगुरु से प्राप्त होती है। हे प्रभुस्वरूप सतगुरु! अपनी दया-मेहर से इस दासी के हृदय में भी बस जाओ। चांद्रायण एकादशी के व्रत, अनेक तरह के अन्य साधन, अड़सठ तीर्थों पर स्नान आदि का लाभ आपकी दया में ही है। जब आपकी दया से आपका नाम मिल जाता है तो उसके अभ्यास द्वारा आप सहज ही जीव के अंग-संग प्रतीत होने लगते हैं।

दयाबाई संकेत कर रही हैं कि प्रभुभक्ति परमात्मा के आगे की गयी सच्ची प्रार्थना है। प्रभुभक्ति ही भक्त के दीन भाव को प्रकट करती है। जब भक्त की प्रार्थना स्वीकार होती है तो प्रभु उसे सतगुरु से मिला देता है। नाम प्रभु का निज रूप है।

बहे जात हैं जीव सब काल नदी के माहिं।
'दया' भजन नौका बिना उपजि उपजि मरि जाहिं॥[28]

राम नाम के लेत ही पातक झरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम की राखो मन में टेक॥[29]

'दयादास' हरि नाम लै, या जग में ये सार।
हरि भजते हरि ही भये, पायो भेद अपार॥
हरि भजते लागै नहीं काल-ब्याल दुख-झाल।
ता तें राम सँभालिये 'दया' छोड़ जग-जाल॥[30]

नारायन के नाम बिन नर नर नर जा चित्त।
दीन भयो बिल्लात है माया बसि ना थित्त॥
नारायन नर देह में पैयत है ततकाल।
सतसंगति हरि भजन सूँ काढ़ो तृस्ना ब्याल॥
.....
'दया' देह सूँ नेह तजि हरि भजु आठौ जाम।
मन निर्मल ह्वै तनिक में पावै निज बिस्राम॥[31]

मनमोहन को ध्याइये तन मन करिये प्रीत।
हरि तज जे जग में पगे देखौ बड़ी अनीत॥
जे जन हरि सुमिरन बिमुख, तासूँ मुखहुँ न बोल।
राम रूप में जे पगे, तासूँ अंतर खोल॥[32]

अनादि काल से जीव कालरूपी नदी में ग़ोते खा रहे हैं। नाम की नौका के बिना इस नदी को पार कर पाना असंभव है। प्रभु के नाम द्वारा सब तरह के पापों का नाश हो जाता है, दु:खों और क्लेशों का अंत हो जाता है। इसलिए केवल हरि के नाम की ही टेक लेनी चाहिये। संसार की हर वस्तु नश्वर है। केवल नाम ही अविनाशी सार पदार्थ है। प्रभु के भजन द्वारा भक्त पूर्ण ज्ञानी ही नहीं, प्रभु का रूप ही हो जाता है।

दयाबाई कहती हैं कि परमात्मा के भजन के बिना मानव-जन्म व्यर्थ है। मनुष्य-जन्म का दुर्लभ अवसर पाकर भी जो व्यक्ति माया के मोह में फँसकर प्रभु की भक्ति की ओर ध्यान नहीं देता, उसे बहुत दु:ख उठाने पड़ते हैं। दूसरी ओर जो व्यक्ति साधु की संगति तथा हरि की भक्ति द्वारा आशा-तृष्णा की अग्नि को शांत कर लेता है, उसका मन निर्मल हो जाता है और आवागमन के चक्कर से छुटकारा हो जाता है। उसका प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है। इसलिये तन-मन से प्रेमपूर्वक हरि के नाम का ध्यान करना चाहिये। प्रभु के नाम से विमुख लोगों की संगति से दूर रहना चाहिये। हृदय की बात केवल प्रभु के ध्यान में मग्न भक्तों से करनी चाहिये।

प्रभु का रूप हो चुके सतगुरु से ही नाम की दात प्राप्त होती है। सतगुरु जिन्हें नाम के साथ जोड़ देते हैं, वे उसके अभ्यास द्वारा सहज ही प्रभु में समाकर उसी का रूप हो जाते हैं।

दया नाव हरि नाम की सतगुरु खेवनहार।
साधू जन के संग मिलि तिरत न लागै बार॥[33]

श्री गोबिंद के गुनन तेहिं भनत रहौ दिन रैन।
'दया' दया गुरदेव की जासूँ होय सुबैन॥[34]

श्री गुरदेव दया करी मैं पायौ हरि नाम।
एक राम के नाम तें होत सँपूरन काम॥[35]

सतगुरु भवसागर से पार ले जानेवाली प्रभु के नाम की नौका के मल्लाह हैं। जो कोई साधु की संगति में पहुँचकर नाम की नौका में सवार हो जाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। जब सतगुरु की दया से नाम का भेद मिल जाये तो उठते-बैठते, सोते-जागते नाम का सुमिरन करते रहना चाहिये। नाम की आराधना करने से लोक-परलोक के सभी कार्य संपूर्ण हो जाते हैं।

जपै जु अजपा जाप

'दया' सकार हँकार अक्षर को जप करत।
अंतर ह्वै उजियार तिमिर अबिद्या सब हरत॥[36]

'दया' कह्यो गुरुदेव ने, कूरम* को ब्रत लेहि।
सभ इंद्रिन कूँ रोक करि, सुरतु स्वाँस में देहि॥[37]

---

* कछुआ

अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि, जपै जु अजपा जाप।
'दया' लहै निज धाम कूँ छुटै सकल संताप॥
स्वाँसउ स्वाँस बिचार करि राखै सुरत लगाय।
'दया' ध्यान त्रिकुटी धरै परमातम दरसाय॥[38]

बिन रसना बिन माल कर अंतर सुमिरन होय।
'दया' दया गुरुदेव की बिरला जानै कोय॥
अजपा सोहं जाप तें त्रिबिध ताप मिटि जाहिं।
'दया' लहै निज रूप कूँ या में संसय नाहिं॥
हृदय कमल में सुरति धरि अजपा जपै जो कोय।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख डारै खोय॥[39]

प्रथम पैठि पाताल सूँ धमकि चढ़ै आकास।
'दया' सुरति नटिनी भई बाँधि बरत निज स्वाँस॥
छिन छिन में उतरत चढ़त कला गगन में लेत।
'दया' रीझि गुरुदेवजु दान अभय पद देत॥
चरनदास गुरु कृपा तें मनुवाँ भयो अपंग।
सुनत नाद अनहद 'दया' आठौ जाम अभंग॥[40]

चरनदास गुरदेव ने मो सूँ कह्यो उचार।
'दया' अहर निसि जपत रहु सोहं सुमिरन सार॥[41]

सतगुर के परताप तें 'दया' कियो निरधार।
अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार॥[42]

'अक्षर' का अर्थ है: अविनाशी नाम। जो जीव प्रभु के अमर-अविनाशी नाम का सुमिरन दिन-रात करता है, उसके अंतर में प्रकाश प्रकट हो जाता है और अज्ञानता का अँधेरा दूर हो जाता है। जैसे कछुआ अपने

सारे अंग अपने अंदर समेट लेता है, उसी प्रकार साधक को भी अपना ध्यान सारी इंद्रियों से समेटकर अंतर में और आँखों के ऊपर लाकर उस शब्द में लीन कर देना चाहिये।

अंतर्मुख अभ्यास करते हुए जिसका ध्यान स्थिर हो जाता है, उसके अंतर में अजपा जाप होने लगता है। आत्मा त्रिकुटी को पार करके परमात्मा के साथ मिलाप करने योग्य बन जाती है। जीव को निज धाम की पहचान हो जाती है, उसे सभी संतापों से छुटकारा मिल जाता है। सतगुरु की दया से कोई बिरला गुरमुख ही इस अवस्था को प्राप्त कर पाता है।

दयाबाई नटिनी का उदाहरण देकर समझाती हैं कि जिस प्रकार एक नटिनी अभ्यास द्वारा अपनी कला में निपुण हो जाती है, उसी तरह जीव भी अभ्यास द्वारा अपनी सुरत को स्थिर कर लेता है। गुरु की कृपा से जब मन अपंग हो जाता है, तब शिष्य को आठों पहर निरंतर अनहद नाद सुनाई देने लगता है। अंत में सतगुरु की कृपा से उसे अभयपद प्राप्त हो जाता है।

प्रगट भयो सुख सार

घंटा ताल मृदंग धुनि सिंह गरज पुनि होय।
'दया' सुनत गुरु कृपा तें बिरला साधू कोय॥
गगन मध्य मुरली बजै मैं जु सुनी निज कान।
'दया' दया गुरदेव की परस्यो पद निर्बान॥[43]

जहाँ काल अरु ज्वाल नहिं सीत उस्न नहिं बीर।
'दया' परसि निज धाम कूँ पायो भेद गँभीर॥
पिय को रूप अनूप लखि कोटि भान उँजियार।
'दया' सकल दुख मिटि गयो प्रगट भयो सुख सार॥[44]

अनँत भान उँजियार तहँ प्रगटी अद्‌भुत जोत।
चकचौंधी सी लगत है मनसा सीतल होत॥

सेत सिंहासन पीव को महा तेज-मय धाम।
पुरुषोतम राजत तहाँ 'दया' करत परनाम॥
बिन दामिन उँजियार अति बिन घन परत फुहार।
मगन भयो मनुवाँ तहाँ दया निहार निहार॥[45]

परमात्मा के निज धाम से उठ रहा शब्द एक ही है, परंतु अंतर में अलग-अलग आध्यात्मिक मंडलों में उसकी ध्वनि अलग-अलग रूप में सुनायी देती है। दयाबाई संकेत करती हैं कि गुरु के कृपापात्र किसी विरले साधक को आंतरिक मंडलों में घंटे, मृदंग, शेर की गर्जन तथा मुरली जैसी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। इन ध्वनियों को सुनती हुई, आंतरिक आध्यात्मिक सफ़र तय करती हुई आत्मा निर्वाण प्राप्त कर लेती है। उस अवस्था में आत्मा जन्म-मरण, सुख-दु:ख, सर्दी-गरमी के भाव से मुक्त हो जाती है। इसका परमधाम में निवास हो जाता है। इसको अपने स्रोत, प्रभु के निज रूप और रचना के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान हो जाता है। करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक उज्ज्वल परमात्मा के अनुपम स्वरूप के दर्शन होते हैं।

अपने प्रभु को प्रकाशमय आसन पर विराजमान देखकर आत्मा बार-बार प्रियतम को प्रणाम करती है। उस अनुपम मंडल में बिजली के बिना प्रकाश हो रहा है, बिना बादलों के वर्षा हो रही है। उस मंडल के अद्भुत सौंदर्य को निहारती हुई आत्मा भी प्रेम और आनंद का रूप हो जाती है।

सतगुरु

गुरु हैं सब देवन के देवा

जै जै परमानंद प्रभु परम पुरुष अभिराम।
अंतरजामी कृपानिधि 'दया' करत परनाम॥
ब्रह्म रूप सागर सुधा गहिरो अति गम्भीर।
आनँद लहर सदा उठै नहीं धरत मन धीर॥
जहाँ जाय मन मिटत है ऐसो तत्त सरूप।
अचरज देखि 'दया' करै बंदन भाव अनूप॥
चरनदास गुरुदेवजू, ब्रह्म-रूप सुख-धाम।
ताप-हरन सब सुख-करन 'दया' करत परनाम॥[1]

नित प्रति बंदन कीजिये, गुरु कूँ सीस नवाय॥
'दया' सुखी कर देत हैं हरि सरूप दरसाय॥[2]

गुरु हैं सब देवन के देवा। गुरु को कोउ न जानत भेवा॥
करुना-सागर कृपा-निधाना। गुरु हैं ब्रह्म रूप भगवाना॥[3]

सतगुरु ब्रह्म सरूप हैं मनुष भाव मत जान।
देह भाव भानैं 'दया' ते हैं पसू समान॥[4]

दयाबाई ने अपनी बानी का आरंभ अपने सतगुरु श्री चरनदास जी और उनके सतगुरु श्री सुखदेव जी की महिमा से किया है। दयाबाई कहती हैं कि सतगुरु की महिमा अपरंपार है। सतगुरु आनंदस्वरूप प्रभु का साक्षात् रूप हैं, अंतर्यामी हैं, अमृत का अथाह सागर हैं, वे अविनाशी हैं। वे सब दु:खों का नाश करके परमसुख की दात बख़्शते हैं। सतगुरु की शरण द्वारा मन निश्चल हो जाता है। सतगुरु के चरणों पर बार-बार नमन है। वे तो देवताओं के भी परम पूज्य हैं। वे दया के सागर हैं, कृपा के भंडार हैं। वे निराकार प्रभु का साकार रूप हैं।

दयाबाई सावधान करती हैं कि सतगुरु को मनुष्य-भाव से देखने और समझने की अज्ञानता नहीं करनी चाहिये। सतगुरु के शरीर की ओर नहीं, बल्कि उनके अंदर काम कर रही प्रभु की शक्ति की ओर ध्यान देना चाहिये। केवल जड़बुद्धि जीव ही सतगुरु को मात्र शरीर समझने की भूल कर सकता है।

गुरु किरपा

अंध कूप जग में पड़ी 'दया' करम बस आय।
बूड़त लई निकासि करि गुरु गुन ज्ञान गहाय॥[5]

छके रहैं आनन्द में आठ पहर गलतान।
अद्‌भुत छबि जिनकी बनी 'दया' धरत मन ध्यान॥[6]

चरनदास गुरुदेव हैं दया-रूप भगवान।
इन्द्रादिक जो देवता देत तिन्हैं सनमान॥[7]

सतगुरू सम कोउ है नहीं या जग में दातार।
देत दान उपदेस सों, करैं जीव भव पार॥[8]

गुरु किरपा बिन होत नहिं भक्ति भाव बिस्तार।
जोग जज्ञ जप तप 'दया' केवल ब्रह्म बिचार॥
या जग में कोउ है नहीं गुरु सम दीन-दयाल।
सरनागत कूँ जानि कै भले करैं प्रतिपाल॥
मनसा बाचा करि 'दया' गुरु चरनौं चित लाव।
जग समुद्र के तरन कूँ नाहिन आन उपाव॥[9]

नेत नेत करि बेद जेहिं गावत है दिन रैन।
'दया कुँवर' चरनदास गुरु मोहिं लखायौ सैन॥
चरनदास गुरुदेव ने कीन्ही कृपा अपार॥
'दया कुँवर' पर दया करि दियो ज्ञान निज सार॥[10]

भोर भये गुरु ज्ञान सूँ मिटी नींद अज्ञान।
रैन अबिद्या मिटि गई प्रगटयो अनुभव भान॥[11]

संसार माया के अंधकार से भरा अंधा कुँआ है। अपने कर्मों के कारण आत्मा इसमें फँसी हुई है। सतगुरु अपने ज्ञान (नाम) की डोरी द्वारा जीवात्मा को इस कुएँ से बाहर निकाल लेते हैं। उनके ध्यान द्वारा आत्मा आठों पहर शब्द के आनंद में मग्न रहती है। केवल मृत्युलोक के जीव ही नहीं, इंद्र जैसे देवता भी सतगुरु के आगे शीश नवाते हैं। शरणागत को अविनाशी परम पदार्थ बख़्शने की सामर्थ्य केवल सतगुरु में है, वही जीवों को प्रभु के साथ मिलाप की युक्ति समझाते हैं।

सतगुरु की कृपा के बिना हृदय में प्रभुभक्ति का भाव विकसित नहीं होता और भक्ति भाव के बिना अन्य साधन जैसे योग, यज्ञ, जप-तप आदि प्रभुप्राप्ति के लिये कारगर नहीं हैं। गुरु अपनी शरण में आये जीव की रक्षा और सँभाल करते हैं। सतगुरु दया करके प्रभु के नाम का भेद बख़्श देते हैं। जो शिष्य तन-मन से सतगुरु के उपदेश पर चलता है, सतगुरु उसका भवसागर से उद्धार कर देते हैं। चिरकाल से वेद जिस

प्रभु को 'नेति-नेति' कहते चले आ रहे हैं, सतगुरु अपनी दया से शिष्य के लिये उस अनंत प्रभु का रहस्य खोल देते हैं। वे जीवात्मा को अपनी पहचान और प्रभु की पहचान के योग्य बना देते हैं।

अनंत काल से अज्ञानता की नींद में सोया जीव सतगुरु के ज्ञान से सचेत हो जाता है। उसको शरीर और संसार की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहिं होवै

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहिं होवै। गुरु बिन चौरासी मग जोवै॥[12]

गुरु ही दीन-दयाल गोसाईं। गुरु सरनै जो कोई जाई॥
पलटैं करैं काग सूँ हंसा। मन को मेटत हैं सब संसा॥[13]

गुरु बिन राम भक्ति नहिं जागै। गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै॥[14]

गुरु को अहि निसि ध्यान जो करिये। बिधिवत सेवा में अनुसरिये॥[15]

चरन कमल गुरुदेव के जे सेवत हित लाय।
'दया' अमरपुर जात हैं जग सुपनो बिसराय॥[16]

जागत ही अज्ञान सूँ दरस्यो हरि गुरु रूप।
जिनके चरन परस 'दया' पायो तत्व अनूप॥[17]

दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बेवान।
चरन कमल चित* चहत हौं, मोहिं तुम्हारी आन॥[18]

* दयाबाई ने सतगुरु के चरणकमलों के अधीन होने का भाव दो प्रकार से प्रकट किया है। चरणकमलों का पहला भाव सतगुरु की शरण है। इसका दूसरा भाव सतगुरु के अंतर्मुख सूक्ष्म स्वरूप या शब्द की ध्वनि और प्रकाश से है।

गुरु के बिना हरि का ध्यान और उसका साक्षात् अनुभव प्राप्त कर पाना असंभव है।

जिस प्रकार अपने स्वभाव के कारण कौआ सारा दिन गंदगी पर बैठता है, उसी प्रकार अज्ञानवश जीव में भी कागवृत्ति प्रधान हो जाती है और उसका सारा ध्यान विषय-विकारों और इंद्रियों के भोगों की ओर रहता है, लेकिन जब जीव सतगुरु की शरण में आ जाता है, तो उसके मन के सब संशय दूर हो जाते हैं और वह कौए से हंस बन जाता है। उसे अपने निर्मल स्वरूप की पहचान हो जाती है।

जो साधक सतगुरु के उपदेशानुसार अशुभ कर्मों का त्याग करके दिन-रात नाम का सुमिरन करता है, उसके अंदर सतगुरु का ध्यान जाग्रत हो जाता है। तब आत्मा अज्ञानता की नींद से जाग उठती है, इसे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है और गुरु में हरि का रूप दिखायी देता है। वह संसाररूपी स्वप्न से जागकर सच्चे अमरधाम में पहुँच जाता है।

फिर जीवात्मा पुकार करती है कि मैं किसी कामना से आपकी शरण में नहीं आयी हूँ। मुझे स्वर्ग या बैकुंठ के सुखों की भी इच्छा नहीं। मैं तो केवल यह चाह लेकर आयी हूँ कि मेरे हृदय में सदा आपके चरणकमल समाये रहें। मेरे प्रेम, जीवन और मनोरथ का आधार भी आप हैं।

गुरु अज्ञा बिन कछु ना करिये

तन मन सूँ अज्ञा में रहिये।
गुरु अज्ञा बिन कछू न करिये।[19]

अज्ञा-कारी गुरमुखी, जो ऐसा सिष होय।
तिन के पुन्न प्रताप ते, आनंद रूपी होय॥[20]

आंतरिक चरणकमल की प्राप्ति बाहरी शरण पर आधारित है। इसलिए दूसरे संतों की तरह दयाबाई की बानी भी इन्हीं भावों से ओतप्रोत है और

इन दोनों पक्षों को एक दूसरे से अलग कर पाना मुमकिन नहीं। दयाबाई उपदेश करती हैं कि तन-मन से सतगुरु की आज्ञा में रहने का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये। जो शिष्य गुरु की आज्ञा को सर्वोपरि मानता है, सतगुरु की कृपा से वह प्रभु में समाकर उसके समान आनंदरूप हो जाता है।

पूर्ण साधु

दयाबाई ने सतगुरु की महिमा के साथ-साथ पूर्ण साधु की भी अपार महिमा की है। अभिप्राय यह है कि केवल पूर्ण साधु या पूर्ण संत ही सतगुरु के रूप में जीव का उद्धार कर सकता है। गुरु का होना ही काफ़ी नहीं है, गुरु का पूर्ण साधु या पूर्ण संत होना भी आवश्यक है।

राम सनेही साध

जगत सनेही जीव है राम सनेही साध।
तन मन धन तजि हरि भजैं जिनका मता अगाध॥[1]

दया दान अरु दीनता दीना-नाथ दयाल।
हिरदै सीतल दृष्टि सम निरखत करैं निहाल॥[2]

काम क्रोध मद लोभ नहिं खट बिकार करि हीन।
पंथ कुपंथ न जानहीं ब्रह्म भाव रस लीन॥[3]

राम टेक से टरत नहिं आन भाव नहिं होत।
ऐसे साधू जनन की दिन दिन दूनी जोत॥[4]

साध रूप हरि आप हैं पावन परम पुरान।
मेटैं दुबिधा जीव की सब का करैं कल्यान॥[5]

साधन के संसा नहीं 'दया' सर्ब सुख जान।
मन की दुबिधा मेट करि कियो राम-रस पान॥[6]

दयाबाई ने पूर्ण साधु के गुण, कर्म, स्वभाव आदि पर भी प्रकाश डाला है। वे कहती हैं कि सारा जगत् मायामय संसार की शक्लों और पदार्थों के मोह में ग्रस्त है, जबकि पूर्ण साधु के हृदय में केवल प्रभु का प्रेम समाया होता है। वह तन, मन, धन सबकुछ प्रभु की भक्ति पर क़ुरबान कर देता है। पूर्ण साधु दया और नम्रता का रूप होता है। जो उसकी शीतल दयादृष्टि का पात्र बन जाता है, वह आनंद से भरपूर हो जाता है। पूर्ण साधु विषय-विकारों, आशा-तृष्णा से ऊपर होता है। वह प्रभुभक्ति के सही और ग़लत साधनों के विवाद में नहीं उलझता। वह नाम के साथ लिव जोड़कर सदा प्रभु के ध्यान में लीन रहता है। पूर्ण साधु सभी आसरे त्याग कर, पूरी तरह प्रभु की शरण ग्रहण कर लेता है, फिर उसके अंदर ज्ञान का प्रकाश दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है।

पूर्ण साधु प्रभु का ही साकार रूप होता है। वह अपने मन के सब भ्रम और संशय त्यागकर पूर्ण ज्ञानी हो जाता है। जीवों के संशय और भ्रम मिटाकर उनका कल्याण करता है। वह प्रभु के नाम का अमृत पीकर अमरपद प्राप्त कर लेता है।

साधू बिरला जक्त में

साधू बिरला जक्त में हर्ष सोक करि हीन।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं जन जन आगे दीन॥[7]

साधू सोई जानिये जाके हिरदे राम।
मान बड़ाई छोड़ कर सुमिरै आठौ जाम॥[8]

साधू सिंह समान है गरजत अनुभव ज्ञान॥
करम भरम सब भजि गये, 'दया' दुर्‌या अज्ञान॥[9]

सब साधन की दास हूँ मो में नहिं कछु ज्ञान।
हरि जन मो पै दया करि अपनी लीजै जान॥[10]

संसार में अपने आपको साधु कहलानेवालों की भरमार है। अनेक साधु अपनी गरज़ पूरी करने के लिए जगह-जगह सवाली बनकर घूमते हैं। सच्चा साधु सांसारिक मान-बड़ाई की इच्छा से ऊपर उठकर अपनी आत्मा को परमात्मा से अभेद करके परमात्मा का रूप हो चुका होता है। जिस प्रकार शेर की गर्जन सुनकर जंगल के सब जानवर दूर भाग जाते हैं, सूर्य के उदय होते ही अंधकार मिट जाता है, उसी प्रकार पूर्ण साधु के ज्ञान के प्रकाश से सब संशय और भ्रम दूर हो जाते हैं तथा विषय-विकार भाग जाते हैं।

दयाबाई विनती करती हैं: मैं अज्ञानी हूँ। मुझमें कोई गुण नहीं है। मैं आपकी शरण में आ गयी हूँ, आप मेरी लाज रख लें।

साध संग महिमा अधिक

साध संग संसार में दुरलभ मनुष सरीर।
सतसंगति सूँ मिटत है त्रिबिध ताप की पीर॥[11]

साध संग छिन एक को, पुन्न न बरन्यो जाय।
रति उपजै हरि नाम सूँ, सबही पाप बिलाय॥[12]

कोटि जज्ञ ब्रत नेम तिथि साध संग में होय।
बिषय ब्याधि सब मिटत हैं सांति रूप सुख जोय॥[13]

साध संग महिमा अधिक गावत सेस महेस।
ये जग में दाता बड़े देत दान उपदेस॥[14]

कलि केवल संसार में और न कोउ उपाय।
साध संग हरि नाम बिन मन की तपन न जाय॥
साध संग जग में बड़ो जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को कलमख डारै खोय॥[15]

साध साध सब कोउ कहै दुरलभ साधू सेव।
जब संगति ह्वै साध की तब पावै सब भेव॥[16]

दयाबाई कहती हैं कि मनुष्य-शरीर दुर्लभ है और पूर्ण साधु की संगति भी दुर्लभ है। जिसे पूर्ण साधु की संगति का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, उसके सभी ताप मिट जाते हैं। साधु की संगति में जाकर हरि के नाम का सुमिरन करने से मन में प्रभु के नाम का प्रकाश प्रकट हो जाता है। नाम के प्रकाश से जीव के सब पापों का नाश हो जाता है।

साधु की संगति में करोड़ों यज्ञों, व्रतों आदि का फल सहज ही मिल जाता है। साधु की संगति द्वारा जीव विषय-विकारों और पापों की तरफ़ से मुख मोड़कर प्रभु के नाम की कमाई में लग जाता है। इस प्रकार विषय-विकारों से उत्पन्न होनेवाले दु:खों का नाश हो जाता है और वह सुख और शांति का पुंज बन जाता है।

शिव और शेषनाग आदि भी साधु की संगति की महिमा करते हैं। लोग दान-पुण्य की बहुत महिमा करते हैं, पर साधु की संगति की महिमा सबसे ऊँची है, क्योंकि उससे नाम का दान प्राप्त होता है। कलियुग में मन में पल-पल धधक रही तृष्णाओं की प्रचंड अग्नि को शांत करने का

साधन साधु की संगति और नाम का अभ्यास है। नाम का रहस्य पूर्ण साधु की संगति द्वारा ही प्राप्त होता है। उसके सत्संग से पलभर में पापों की मैल दूर हो जाती है।

संसार साधुओं से भरा हुआ है परंतु पूर्ण साधु की संगति और सेवा का सौभाग्य किसी बिरले को प्राप्त होता है। प्रभु का रहस्य केवल पूर्ण साधु की संगति द्वारा प्राप्त होता है।

सच्चा सूरमा

सूरा वही सराहिये

गुरु सब्दन कूँ ग्रहण करि बिषयन कूँ दे पीठ।
गोबिंद रूपी गदा गहि मारो करमन डीठ॥
जग तजि हरि भजि दया गहि कूर कपट सब छाँड़।
हरि सन्मुख गुरु-ज्ञान गहि मनहीं सूँ रन माँड़॥[1]

सूरा वही सराहिये बिन सिर लड़त कवंद*।
लोक लाज कुल कान कूँ तोड़ि होत निर्बंद॥
सुनत सब्द नीसान कूँ मन में उठत उमंग।
ज्ञान गुरज हथियार गहि करत जुद्ध अरि संग॥
जो पग धरत सो दृढ़ धरत पग पाछे नहिं देत।
अहंकार कूँ मार करि राम रूप जस लेत॥
आप मरन भय दूर करि मारत रिपु को जाय।
महा मोह दल दलन करि रहै सरूप समाय।[2]

सूरा सन्मुख समर में घायल होत निसंक॥
यों साधू संसार में जग के सहैं कलंक॥

* बिना सिर का धड़

कायर कँपै देख करि साधू को संग्राम।
सीस उतारै भुइँ धरै जब पावै निज ठाम॥[3]

दयाबाई कहती हैं कि सबसे बड़ा सूरमा वह है जो सतगुरु के उपदेश पर दृढ़ रहता हुआ विषय-विकारों, इंद्रियों के भोगों को सदा के लिए त्याग देता है। वह परमात्मा के नाम की गदा हाथ में लेकर, सब कर्मों का नाश कर देता है। छल-कपट छोड़कर जगत् के मोह से मुँह मोड़कर वह प्रभु का भजन करता है। वह प्रभु को निरंतर अपने संग समझता हुआ मन के साथ जूझता है। पारमार्थिक रणभूमि में वह जो भी क़दम उठाता है, आगे की ओर उठाता है, पीछे मुड़कर कभी नहीं देखता। वह मर जाता है पर हार नहीं मानता। सच्चा सूरमा हौंमैं का नाश कर देता है। वह मृत्यु के भय से ऊपर उठ जाता है, जबकि परमार्थ की रणभूमि में जूझते ऐसे साधु को देखकर कायर थर-थर काँपता है। वही शिष्य सच्चा सूरमा है जो मोह-ममता, हौंमैं आदि शत्रुओं पर विजय पाकर अपने आत्मिक स्वरूप को प्रकट कर लेता है।

प्रभुप्रेम

प्रेम मगन जे साध जन

'दया' प्रेम उनमत्त जे तन की तनि सुधि नाहिं।
झुके रहैं हरि रस छके थके नेम ब्रत नाहिं॥
'दया' प्रेम प्रगटयौ तिन्हैं तन की तनि न संभार।
हरि रस में माते फिरैं गृह बन कौन बिचार॥[1]

प्रेम मगन जे साधवा बिचरत रहत निसंक।
हरि रस के माते 'दया' गिनैं राव ना रंक॥[2]

प्रेम मगन गद्गद बचन पुलकि रोम सब अंग।
पुलकि रह्यो मन रूप में 'दया' न ह्वै चित भंग॥
कहूँ धरत पग परत कहुँ डिगमिगात सब देंह।
दया मगन हरि रूप में दिन दिन अधिक सनेह॥[3]

हरि रस माते जे रहैं तिन को मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति 'दया' तृन सम जानत साध॥[4]

प्रेम मगन जे साध जन तिन गति कही न जात।
रोय रोय गावत हँसत 'दया' अटपटी बात॥[5]

पंथ प्रेम को अटपटो कोइयन जानत बीर।
कै मन जानत आपनो कै लागी जेहिं पीर॥[6]

संत-महात्माओं ने प्रेम को सबसे उत्तम गुण माना है। दयाबाई कहती हैं कि प्रभु प्रेमरूप है और उसकी पहचान करने का उत्तम साधन भी निर्मल प्रेम ही है। जिनके अंदर प्रभु के प्रेम की मस्ती भरी हुई है, उन्हें अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं रहती। उनकी वृत्ति अंतर्मुखी हो जाती है। उनके लिए घर और जंगल का अंतर समाप्त हो जाता है। वे बाहरी हालात के प्रभाव से निर्लेप रहते हैं। उनके लिए राजा और रंक का अंतर समाप्त हो जाता है। उनका मन सदा अडोल रहता है और वे सहज अवस्था में विचरण करते हैं। उनके अंदर समाया प्रभु का प्रेम कभी कम नहीं होता, बल्कि दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

प्रभुप्रेम के रंग में रँगे साधुओं की अवस्था वर्णन से परे है। उनके लिए संपूर्ण त्रिलोकी की संपदा तिनके के समान तुच्छ होती है। वे क्षणभर में रो पड़ते हैं, क्षणभर में हँसने लगते हैं और अगले ही क्षण गाने लगते हैं। संसार के लोगों को उनकी बातें अटपटी प्रतीत होती हैं, क्योंकि वे उनकी ऊँची आंतरिक अवस्था से अनजान होते हैं।

प्रेम का मार्ग अति टेढ़ा है। केवल किसी शूरवीर प्रेमी को ही इस मार्ग की पीड़ा का अनुभव होता है। प्रेम की पीड़ा वही जानता है जो इसमें से गुज़र रहा हो।

बिरह बिथा सूँ हूँ बिकल

प्रेम-पीर अति ही बिकल कल न परत दिन रैन।
सुंदर स्याम सरूप बिन 'दया' लहत नहिं चैन॥[7]

बिरह ज्वाल उपजी हिये राम-सनेही आय।
मन-मोहन सोहन सरस तुम देखन दा चाय॥
बिरह बिथा सूँ हूँ बिकल दरसन कारन पीव।
'दया' दया की लहर कर क्यों तलफावो जीव॥[8]

जनम जनम के बीछुरे हरि अब रह्यो न जाय।
क्यों मन कूँ दुख देत हौ बिरह तपाय तपाय॥[9]

काग उड़ावत थके कर नैन निहारत बाट।
प्रेम सिन्ध में पर्‌यौ मन ना निकसन को घाट॥[10]

आसा फाँसी तोर करि आप रहे लूकाय।
सुन्दर स्याम सरूप तुम कहाँ रहे घर छाय॥[11]

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ हरि आवैं केहि ओर।
छिन ऊठूँ छिन गिरि परूँ राम-दुखी मन मोर॥
सोवत जागत एक पल नाहिन बिसरौं तोहिं।
करुना-सागर दया-निधि हरि लीजै सुधि मोहिं॥[12]

चित चितवन हरि रूप बिन मो मन कछु न सुहाय।
हरि हरखित हमकूँ 'दया' कब रे मिलैंगे आय॥[13]

रे मन तू निकसत नहीं है तू बड़ा कठोर।
सुन्दर स्याम सरूप बिन क्यों जीवत निस भोर॥[14]

प्रेम-पुंज प्रगटै जहाँ तहाँ प्रगट हरि होय।
'दया' दया करि देत हैं श्री हरि दर्सन सोय॥[15]

सब संतों ने विरह को प्रभुप्राप्ति के लिए अति आवश्यक माना है। विरह प्रेम की गहराई को प्रकट करता है। जिस प्रेमिका के हृदय में सच्चा प्रेम है, वह विरह में प्रियतम से मिलाप के लिए तड़पती है।

जब आत्मारूपी प्रेमिका के अंदर प्रभु प्रियतम के वियोग का दर्द जाग्रत हो जाता है, तो उसका हृदय पुकार उठता है: हे प्रभु! मैं अनंत जन्मों से तेरे वियोग की अग्नि में जल रही हूँ। अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में कौए उड़ाते-उड़ाते हाथ थक गये और राह देखते-देखते नैन थककर चूर हो गये हैं। पता नहीं तूने मुझे छोड़कर कहाँ ठिकाना बना लिया है।

आत्मारूपी प्रेमिका इस प्रतीक्षा में व्याकुल रहती है कि कब प्रियतम प्रभु उसके अंतर में आकर दर्शन दें। उसका मन विचलित और उदास रहता है। सोते-जागते, उठते-बैठते वह पलभर भी प्रियतम को नहीं भूलती। प्रेमिका कहती है कि प्रियतम के वियोग में जीने से तो मृत्यु अच्छी है। वह प्रियतम के बिना पलभर भी जीवित नहीं रहना चाहती।

दयाबाई कहती हैं कि यही तड़प और पीड़ा प्रेमिका को वियोग का रास्ता पार करके प्रियतम की मंज़िल तक पहुँचने में सहायता करती है। जब आत्मारूपी प्रेमिका प्रियतम के दीदार के लिए तड़पती है, तो प्रभुरूपी प्रियतम उस पर दया करके उसे अपने दर्शन देकर निहाल कर देते हैं।

चेतावनी

'दया' जगत में यह नफ़ो हरी सुमिरन कर लेह।
छल-रूपी छिन-भंग है पांच तत की देह॥...
राम कहो फिर राम कहु, राम नाम मुख गाव॥
यह तन बिनस्यो जातु है नाहिन आन उपाव॥[1]

'हरी सुमिरन कर लेह'-दयाबाई जीवात्मा को सावधान करती हैं कि अपने आप को शरीर समझने की अज्ञानता त्याग दो। पाँच तत्त्वों से बना यह शरीर नश्वर है। यह सत्य होने का भ्रम उत्पन्न करता है, परंतु वास्तव में केवल छल है। जीवन की अवधि हर पल कम होती जा रही है। पता नहीं इसको किस समय मृत्यु का ग्रास बन जाना है। इसलिए मनुष्य-जन्म के इस अवसर से लाभ उठाकर परमात्मा का अधिक से अधिक सुमिरन कर लेना चाहिये।

लोग प्रभु मिलाप के लिये मनमाने ढंग से उस प्रभु की भक्ति के अनेक साधन अपनाते हैं, जिनसे कुछ पुण्य फल प्राप्त भी होता है, परंतु प्रभु के मिलाप का एकमात्र साधन सतगुरु की बतायी युक्ति के अनुसार नाम का सिमरन करना है; अन्य कोई साधन कारगर नहीं हो सकता।

सार

* अपने सतगुरु संत चरनदास जी की तरह सहजोबाई और दयाबाई ने जीवात्मा को यह अमर संदेश दिया है कि तेरा वास्तविक स्वरूप शरीर और मन न होकर आत्मा है। प्रभु की अंश होने के कारण आत्मा परमात्मा की भाँति अजर-अमर है। जीवात्मा का सच्चा धर्म अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करना है। प्रभु की पहचान हो जाने पर यह प्रभु की तरह ही शक्तिरूप, ज्ञानरूप, प्रेमरूप और आनंदरूप बन जाती है।

* सहजोबाई और दयाबाई जीवात्मा को सावधान करती हैं कि शरीर और संसार दोनों नश्वर हैं। इसलिये संसार के सुख भी अधूरे और नश्वर हैं। आत्मा को पूर्ण और अविनाशी आनंद केवल पूर्ण और अविनाशी प्रभु के साथ मिलकर ही प्राप्त हो सकता है।

* सहजोबाई और दयाबाई चेतावनी देती हैं कि जगत् का मोह जीवात्मा को जगत् के साथ बाँधकर रखता है और प्रभु का प्रेम इसको जगत् के मोह से मुक्त करके प्रभु के साथ मिला देता है। जीवात्मा को जगत् का मोह त्यागकर हृदय में प्रभु का सच्चा प्रेम उत्पन्न करना चाहिये।

* अदृश्य, निराकार प्रभु के साथ प्रेम कर पाना असंभव है। जब तक वह निराकार हरि, गुरु का साकार रूप धारण करके जीव के सामने नहीं आता, उसके अंदर निराकार प्रभु का प्रेम पैदा नहीं होता। सतगुरु की संगति द्वारा जीव के अंदर प्रभु का प्रेम और विश्वास उत्पन्न हो जाता है और प्रभु के साथ मिलाप की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है।

* परमात्मा शब्द यानी नाम के रूप में प्रत्येक जीव के अंदर है। जीव का ध्यान बाहर फैला हुआ है, इसी कारण प्रभु दिखायी नहीं देता। सतगुरु जीव को अपने अंतर में ध्यान स्थिर करने की युक्ति सिखाता है। गुरुमंत्र के जाप से ध्यान अंदर स्थिर हो जाता है। इससे आत्मा की शब्द की ध्वनि को सुनने की शक्ति सुरत और शब्द के प्रकाश को देखने की शक्ति निरत दोनों जाग्रत हो जाती हैं। शब्द की ध्वनि से दिशा प्राप्त करके और शब्द के प्रकाश के पीछे चलती हुई आत्मा शब्द के स्रोत प्रभु में समा जाती है। इस अभ्यास को नाम की साधना, नाम की कमाई, शब्द की साधना या सुरत-शब्द योग कहकर पुकारा गया है।

* परमात्मा के साथ मिलाप का यह स्वाभाविक साधन परमात्मा द्वारा सृजित है। इस साधन और मार्ग के सिवाय कोई अन्य साधन प्रभु के मिलाप में कभी सहायक सिद्ध नहीं हो सकता। संसार के सब धर्मों और धर्मग्रंथों में इस अनादि और परिवर्तन रहित साधन को ही प्रभुप्राप्ति का सच्चा साधन स्वीकार किया गया है। प्रत्येक धर्म, जाति और समय का हर व्यक्ति, समान रूप में इससे लाभ उठाकर प्रभु के साथ मिलाप कर सकता है।